अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल

भारत के विकास हेतु भाषा नीति

bhashaneeti

भाषानीति

ভাষা নীতি

மொழி கொள்கை

प्रभात

अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल

अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल

भारत के विकास हेतु भाषा नीति

संक्रान्त सानु

हिंदी अनुवाद सहयोग

सुभाष दुआ

शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास

प्रभात पेपरबैक्स
प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक का उद्यम
www.prabhatbooks.com

मेरे पिताजी

हिंदी कवि **प्रो. महेंद्र प्रताप**

और

खंदोदरा गाँव के बच्चों को!
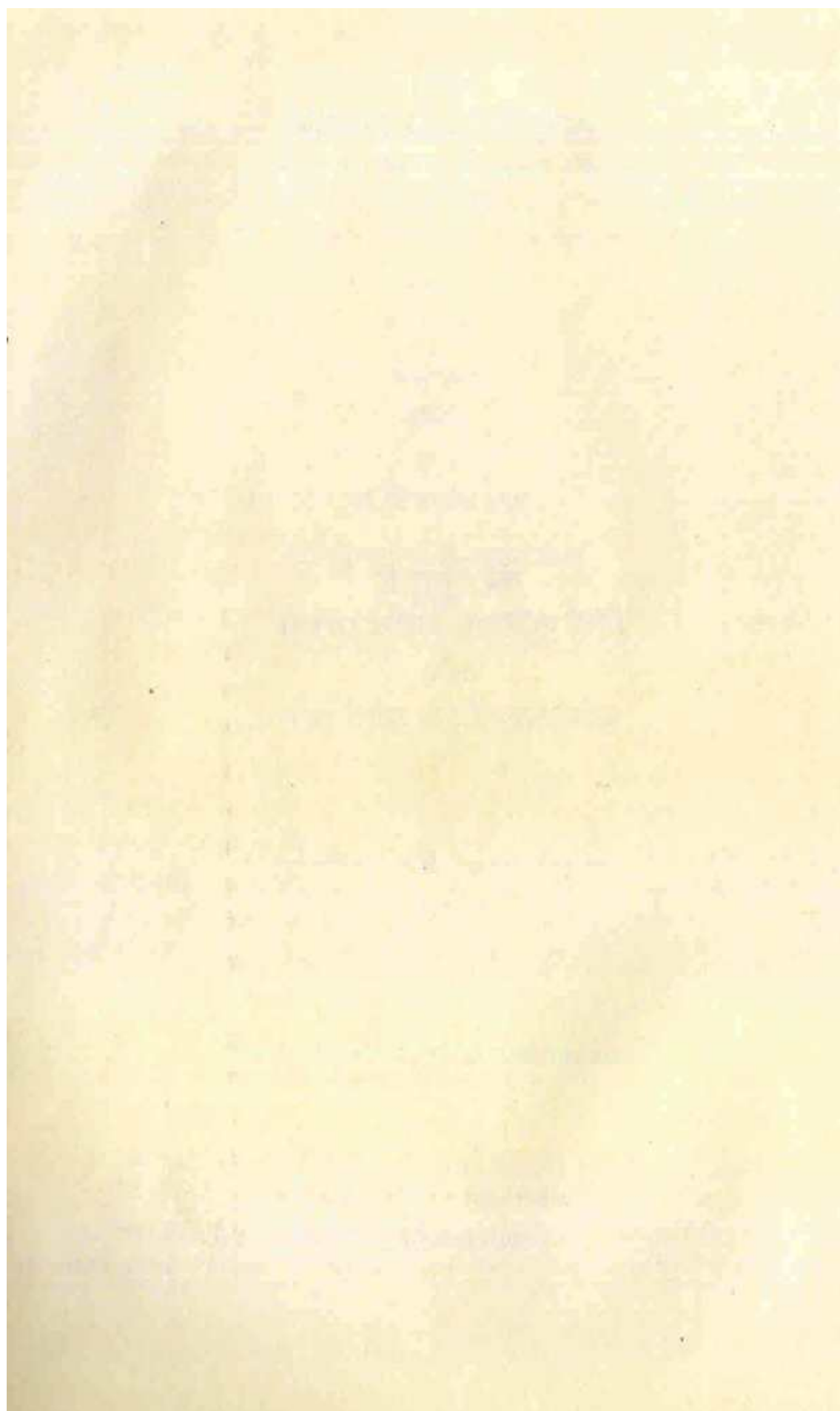
भूमिका

भारत में केवल चार प्रतिशत लोग ही धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हैं। मैं उसी अंग्रेजी वर्गीकृत श्रेणी से हूँ, जहाँ देशी भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी लिखी व बोली जाती है। मैं चंडीगढ़ में आइरिश मिशनरीज द्वारा संचालित अंग्रेजी माध्यम के एक स्कूल में पढ़ा हूँ। मैंने यहीं पर लिखित व बोलचाल की अंग्रेजी पर अधिकार प्राप्त किया। हमारी अंग्रेजी प्रधान सामाजिक व्यवस्था में अंग्रेजी प्रयोग द्वारा इस पर मेरा अधिकार परिपक्व और पुष्ट हुआ। प्रश्न उठता है कि मुझे अंग्रेजी में इस प्रकार का वैशिष्ट्य प्राप्त होने पर भी भारत की वर्तमान भाषाई नीति के परिवर्तन के लिए मैं क्यों कटिबद्ध हुआ?

इस विशेषाधिकार को चुनौती के रूप में मेरे समक्ष अनेकों प्रश्न थे। सर्वप्रथम, हिंदी भाषी घरेलू वातावरण के बालक से अंग्रेजी माध्यम के स्कूल का संक्रांति काल मुझे अच्छी तरह से स्मरण है। अंग्रेजी भाषा विदेशी एवं कठिन थी। मैंने इसके लिए संघर्ष किया। कई वर्षों पर्यंत अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के बावजूद मैं बोलते समय हिंदी और अंग्रेजी मिला देता था। अंग्रेजी में सहजता ला पाना वास्तव में मेरे लिए एक दुष्कर कार्य था।

एक बार कानपुर, जहाँ से मैंने आई.आई.टी. उत्तीर्ण की, से दिल्ली के लिए बस में खिड़की के पास बैठा था कि सफेद धोती-कुरते में एक ग्रामीण मेरे निकट आकर बैठ गया। मैं उससे दूरी बनाते हुए तनिक खिड़की की ओर सरक गया। वास्तव में मेरे मानस-पटल पर ग्रामीणों की जो छवि थी, वह मैले-कुचैले, अंग्रेजी न जाननेवाले और इसी आधार पर एक अनपढ़ की सी थी। कॉन्वेंट स्कूलों में मेरी शिक्षा ने मुझमें विकृत अहं की प्रवृत्ति पैदा की थी। यह मेरी इसी प्रवृत्ति का ही दोष था कि मैं इस प्रकार के लोगों को गँवार मानता

और उन्हें हेय दृष्टि से देखता था। परंतु यात्रा लंबी होने के कारण मैं अपने इस सहयात्री से थोड़ा खुला और बातचीत की शुरुआत हुई। मैंने पाया कि घनश्याम (मेरा ग्रामीण सहयात्री) के कपड़े मेरी टी-शर्ट और जींस से अधिक साफ-सुथरे थे। उसके प्रति मुझे मेरी व्यर्थ की दुर्भावना का बोध होने पर ही मुझे यह सच्चाई दिखाई दी। उसकी भाषा सुसंस्कृत थी। चंडीगढ़ में अपने माली की तरह उसकी भाषा में मुझे अवधी उच्चारण का पुट दिखा।

हमने भाषाओं से संबंधित विषय पर चर्चा आरंभ की। चर्चा के अंतर्गत घनश्याम ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की बात बताई—हमारा वातावरण हमारी भाषाओं को प्रभावित करता है। यदि आप ध्यान दें तो पता चलेगा कि भाषाएँ बहती नदियों का अनुसरण करती हैं। जहाँ पर नदियाँ वेग और उफान के साथ बहती हैं, वहाँ भाषा की ध्वनि उसी के ही अनुरूप होती है। पंजाब और गंगा के उद्‍गम स्थल इसके प्रत्यक्षदर्शी हैं, परंतु जैसे-जैसे गंगा बंगाल की ओर प्रवहमान होती हुई आगे बढ़ती है तो यही भाषाई ध्वनि मृदुल, नर्म और गोलाई लिये सुनाई पड़ती है।

उसके वक्तव्य को मैं मंत्रमुग्ध हो सुनता रहा। एक दशक उपरांत जब मैंने अमरीका में व्यावहारिक रूप से यह अनुभव किया तो उसके वही शब्द मुझे बार-बार उस तथ्य का स्मरण कराते थे। न्यूयॉर्क का शाब्दिक वातावरण उस नगर की भाषा में प्रतिध्वनित-तरंगित होता है, जबकि दक्षिणी छोर की ओर अभिमुख मिसिसिपी नदी के मंद-मंद प्रवाह के अनुरूप ही वहाँ की भाषा सुनी जा सकती है।

मुझे अब यह आभास हो चुका था कि जिस व्यक्ति को मैंने अपनी अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा में मिले संस्कारों के वशीभूत अपने पूर्वग्रहों के कारण अनपढ़ मानते हुए नकार दिया था, वास्तव में वह गहन दृष्टि से संपन्न और परिपक्व था। इस प्रकार भारत में व्यवस्थामूलक दोषों का मुझे स्वाभाविक अनुभव हुआ।

मुझे पहली बार इस बात का आभास हुआ कि भारत के ग्रामीण अंचलों में पर्याप्त बौद्धिकता है, जिसके समुचित दोहन की आवश्यकता है। अपनी इसी धारणा की पुष्टि के लिए सामान्य ज्ञान के कुछेक प्रश्नों के साथ मैं राजस्थान, उत्तराखंड और हरियाणा के ग्रामों के प्रवास पर निकल पड़ा था। सामान्य ज्ञान का यह परीक्षण मूलत: मौखिक और सांकेतिक था, ताकि इसके लिए भाषाई

कौशल्य का अभाव आड़े न आए। जब मैंने इस परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों को संयोजित किया तो इसके परिणाम चौंका देनेवाले थे। इस परीक्षण में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह उभरकर सामने आया कि भारत के ग्रामों में न केवल प्रतिभा है बल्कि ग्रामीण बच्चे भारतीय शहरी बच्चों की तुलना में अधिक मेधावी हैं। हरियाणा के एक ग्राम में मैंने पाया कि कक्षा के 30 प्रतिशत बच्चे 90 प्रतिशत स्तर से ऊपर थे (साधारणत: केवल 10 प्रतिशत बच्चे 90 प्रतिशत स्तर से ऊपर होते हैं)। वहाँ प्रिंसिपल से मिलने पर उन्होंने बताया कि बच्चों की प्रगति के मार्ग में गणित की अपेक्षा अंग्रेजी बड़ी बाधा है। उनके लिए अंग्रेजी असंगत थी, जबकि वे गणित में बहुत मेधावी और चमत्कारी थे। उन बच्चों के लिए अंग्रेजी विवशता व बाध्यता थी। सभी प्रतियोगी परीक्षाएँ अंग्रेजी में थीं। उन्हें उत्कृष्ट उच्च शिक्षा केवल अंग्रेजी में ही उपलब्ध थी। वे आर्थिक दृष्टि से प्रगति करना चाहते थे, परंतु सामान्य धारणा के विपरीत उनमें अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा का अभाव था। सरकारी आर्थिक सहायता से चलनेवाली अधिकांश उच्च शिक्षा व्यवस्था में भारतीय द्वितीय श्रेणी के नागरिक बना दिए जाते हैं। हमारी इसी व्यवस्था ने बौद्धिक विकास और आर्थिक प्रगति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न किए हुए हैं।

मैंने इजराइल से दक्षिणी कोरिया और स्वीडन से बार्सिलोना की यात्रा की। अभी तक 20 से अधिक देशों की यात्रा की है। मेरे सामने सबसे अधिक चौंकानेवाले तथ्य मेरी इन्हीं यात्राओं के दौरान आए। मैंने पाया कि विश्व भर के सर्वाधिक सफल और समृद्ध देशों में बच्चों को विज्ञान, अभियांत्रिकी, चिकित्सा और व्यावसायिक शिक्षा उनकी निजी भाषाओं में दी जाती है। यही राष्ट्र भारत की तुलना में अधिक सफल हैं, क्योंकि वहाँ समूची जनसंख्या की प्रतिभा को स्थानीय भाषाओं में निखारकर प्रतिस्पर्धा से भरे विश्व में वे अपनी शर्तों पर अपना स्थान बनाए हुए हैं। दक्षिणी कोरिया और जापान की ढेरों बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं, जो ऐसे लोगों द्वारा संचालित की जा रही हैं, जो अंग्रेजी का प्रयोग नहीं करते। जनसंख्या की दृष्टि से इजराइल एक छोटा सा देश है, तथापि उसने उच्च वैज्ञानिक कार्यक्रम हिब्रू में चलाना उचित समझा है। हिब्रू माध्यम के तकनीकी एवं अभियांत्रिक महाविद्यालय भारत के आई.आई.टी. से अधिक उन्नत हैं। भारत में स्वीकृत अंग्रेजी माध्यम की अपरिहार्यता निश्चित रूप से दोषपूर्ण है।

मैंने इस संबंध में जितना अध्ययन किया है, उतना ही यह स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया कि आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भारत के पिछड़ेपन का कारण हमारा अंग्रेजी मोह ही है। इस पुस्तक में जहाँ मेरा शोधकार्य और अनुभव परिलक्षित होता है, वहाँ नीतिगत ऐसी अनुशंसाएँ भी की गई हैं, जो हमारे देश में भारतीय भाषाओं के वर्चस्व को पुन: स्थापित करने और प्रगति की रेल को वापस पटरी पर लाने में सहायक होंगी।

भाषा नीति के प्रति इस सोच में मुख्य अंतर यह है कि इसमें भारतीय भाषाओं के समर्थन में आर्थिक प्रणाली के विकास पर विशेष बल दिया गया है। इसमें सर्वप्रमुख है—आर्थिक परिणामों के साथ भारतीय भाषाओं के संबंध को पुन: स्थापित करना। प्रचलित भावना यह बन गई है कि गीत, नृत्य, फिल्मों आदि के लिए तो देशी भाषाएँ ठीक हैं, लेकिन विज्ञान, अभियांत्रिकी, व्यावसायिक शिक्षा इत्यादि के लिए अंग्रेजी अनिवार्य है। प्राच्यविद् वस्तुत: इसी बात पर बल देते रहे हैं। देशी भाषा के वातावरण में विकसित अधिकांश भारतीय बच्चों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा उनकी अपनी भाषा में समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। समृद्ध न्यायसंगत भारत इसी आधार पर निर्मित हो सकता है।

यह पुस्तक अंग्रेजी विरोधी नहीं है। द्वितीय अथवा तृतीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का शिक्षण उपयुक्त है। अनेक देशों में यही व्यवस्था है, परंतु उच्च शिक्षा, न्यायालय और शासन हेतु भारतीय भाषाओं पर रोक तथा अंग्रेजी को अपनी प्रथम भाषा बनाने से असुविधाएँ सामने आती हैं। इससे भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों को समान अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते। परिणामस्वरूप अधिकतर विद्यार्थियों को विवश होकर अंग्रेजी माध्यम लेना पड़ता है। जैसाकि हम पुस्तक में आगे देखेंगे, इस व्यवस्था से हमारे राष्ट्र में भाषाई पंगु पैदा होते जा रहे हैं, जो किसी भी भाषा में प्रवीण नहीं होते।

तमिल भाषियों के लिए हिंदी और अधिकतर भारतीयों के लिए अंग्रेजी, लोग ये भाषाएँ स्वाभाविक रूप से नहीं जानते। ऐसी भाषाएँ सीखने के लिए बाध्य करने की बजाय प्रत्येक व्यक्ति को उनकी अपनी भाषा में विकसित होने की छूट होनी चाहिए और फिर बाद में अन्य भाषाएँ सीखी जा सकती हैं।

मैं अपने सहयोगी कार्ल के प्रति आभार व्यक्त करना चाहूँगा। यद्यपि मैंने अंग्रेजी वर्ग व्यवस्था पर अपना लेख 2007 में लिखा था, परंतु मैंने इसे तब भाषाई नीति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया था। 'आर्ट ऑफ लिविंग' के एक

डी.एस.एन., यानी दिव्य समाज का निर्माण कार्यक्रम के अंतर्गत जब अपने विचार प्रस्तुत किए तो कार्ल मेरे साथ जुड़ गए। उनकी ऊर्जा और उत्साह ने इस कार्य को फलीभूत होने में अपना योगदान दिया।

भाग-1, इस पुस्तक के प्रथम दो अध्याय मेरे मूल लेख 'द इंग्लिश क्लास सिस्टम' 'अंग्रेजी वर्ग व्यवस्था' का पुनः प्रस्तुतीकरण है।

भाग-2, हमारी भाषा नीति में परिवर्तन की निर्णायक आवश्यकता पर बल देता है। यदि आप पहले से ही परिवर्तन के पक्ष में हैं अथवा इससे सहमत हैं तो आप नीतिगत अनुशंसा के भाग-3 तक सीधे जा सकते हैं। यदि आप अभी भी शिक्षा के लिए अंग्रेजी माध्यम की अपरिहार्यता अथवा अनिवार्यता का विचार रखते हैं और आर्थिक व सभ्यतामूलक परिवर्तन की आवश्यकता के संबंध में स्पष्ट दृष्टि नहीं रखते तो आपसे भाग-3 से पूर्व भाग-1 व भाग-2 पढ़ने का अनुरोध है।

—संक्रान्त सानु
गुड़गाँव/सीआटल, 2015
जालस्थल : http://bhashaneeti.org
इ-मेल : sankrant@gmail.com • bhashaneeti@gmail.com
ट्विटर : @sankrant
फेसबुक : https://www.facebook.com/bhashaneeti

अनुक्रम

परिशिष्ट–1 : भाषा की प्रौद्योगिकी

परिशिष्ट–2 : देश में अध्ययन के कुछ प्रकरण

भाग–1
आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिणाम

अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा और आर्थिक प्रगति

आज ऐसी धारणा बन गई है कि भारत की वर्तमान आर्थिक प्रगति में अंग्रेजी भाषा का विशेष योगदान है। हम यहाँ विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति और शिक्षा माध्यम के प्राथमिक विश्लेषण से यह परीक्षण करने का प्रयास करेंगे कि यह धारणा तथ्यों पर आधारित है भी या नहीं। हम विशिष्ट रूप से अंग्रेजी माध्यम शिक्षा के परिणाम का अध्ययन कर रहे हैं न कि अंग्रेजी को द्वितीय व तृतीय भाषा के रूप में सीखकर उसे अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना। प्राथमिक परिणामों से ये संकेत मिलते हैं कि आर्थिक प्रगति का अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के प्रसार से कोई संबंध नहीं है। इस विषय का अधिक गहनता के साथ अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।

भारत में भाषा नीति पर चर्चा मुख्य रूप से दो विषयों पर ही केंद्रित रहती है, राष्ट्र भाषा या संपर्क भाषा और प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के लिए अपनाया जानेवाला भाषाई फॉर्मूला। सार्वजनिक राष्ट्रीय भाषा पर होनेवाली चर्चाएँ प्राय: दो श्रेणियों में बँटी रहती हैं। एक तो वे, जो हिंदी का समर्थन करते हैं; दूसरे वे, जो अंग्रेजी की वकालत करते हैं। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के पक्षधर इसे सांस्कृतिक और राष्ट्रीय महत्त्व के साथ जोड़ते हैं तो अंग्रेजी समर्थक प्रगति आधारित आर्थिक अवसरों और अंग्रेजी प्रयोग को वैश्विक अपरिहार्यता का तर्क देते हैं। अंग्रेजी अपनाना व व्यवहार करना दोनों ही का पर्याप्त शैक्षणिक अध्ययन नहीं हुआ। भारतवर्ष में भले ही जातिवाद संबंधित ढेरों मुद्रित सामग्री उपलब्ध है, परंतु भारतीय शहरों में अंग्रेजी

भाषा आधारित सामाजिक ध्रुविकरण और अंग्रेजी जातिवाद का कोई विशेष शैक्षणिक अध्ययन नहीं मिलता। भारत में अंग्रेजी आधारित ध्रुविकरण का समाज वैज्ञानिक अध्ययन का अभाव है। अंग्रेजी के ज्ञान और अंग्रेजी उच्चारण के आधार पर सामाजिक स्तर पर वर्ग विन्यास के साथ-साथ तदनुरूप सामाजिक भेदभाव आश्चर्यचकित करता है।

इसके अतिरिक्त यद्यपि अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा मोटे तौर पर आर्थिक प्रगति से जोड़कर देखी जाती है, जबकि भारत में इससे संबंधित शोधपरक साहित्य का प्रायः अभाव है, जो इस तथ्य का समर्थन करता हो। उदाहरणतः क्या भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा का प्रसार जी.डी.पी. दर की वृद्धि में सहायक अथवा अवरोधक बन पाया है? ऐसे अनेक अध्ययन हुए हैं, जिनमें शिक्षा की दर को विश्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा व आर्थिक प्रगति के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है, परंतु विशेष रूप से शिक्षा के माध्यम और आर्थिक आँकड़ों से उनकी संबद्धता संबंधी अध्ययन प्रायः उपलब्ध नहीं हैं।

यह लेख भारत में अंग्रेजी माध्यम के इन्हीं दोनों पक्षों को आधार बनाकर आकलन करता है। आशा है, यह इन्हीं प्रश्नों का अधिक गहनता के साथ अध्ययन कर पाने में प्रेरक सिद्ध होगा।

भाषा का अर्थशास्त्र

यदि अंग्रेजी किसी राष्ट्र की राजभाषा अर्थात् सरकारी कामकाज की भाषा बनती है तो क्या उससे वहाँ की आर्थिक प्रगति में सहायता अथवा अवरोध उत्पन्न हो सकता है? आर्थिक स्थिति भाषा को कैसे प्रभावित करती है, यह अध्ययन करने के लिए हमने विभिन्न देशों की जी.एन.पी. और राजभाषा की तुलना की। इससे हमें चौंका देनेवाले परिणाम मिले। आइए, हम प्रति व्यक्ति जी.एन.पी. के आधार पर विश्व के कुछ उच्च एवं निम्न श्रेणी के देशों का उनकी राजभाषा के साथ जोड़कर अवलोकन करें। प्रति व्यक्ति मापदंड के आधार पर बहुत कम जनसंख्यावाले देशों के परिणाम अधिक अर्थपूर्ण नहीं होंगे, यह सोचकर हमने 50 लाख से कम जनसंख्यावाले देशों को इस सूची में नहीं रखा। हमने प्रति व्यक्ति जी.एन.पी. के आधार पर उपलब्ध सूची में से प्रथम 20 एवं अंतिम 20 देशों को चुना है।

सर्वाधिक धनी 20 देश*

तालिका –1 (प्रति व्यक्ति जी.एन.पी. के आधार पर सर्वाधिक धनी देश)

स्तर	देश	प्रति व्यक्ति जी.एन.पी.	जनभाषा	राजभाषा
1.	स्विट्जरलैंड	38,380	जर्मन, फ्रेंच, इटालियन	जर्मन, फ्रेंच, इटालियन
2.	डेनमार्क	32,050	डेनिश	डेनिश
3.	जापान	32,030	जापानी	जापानी
4.	संयुक्त राज्य अमरीका	31,910	अंग्रेजी	अंग्रेजी
5.	स्वीडन	26,750	स्वीडिश	स्वीडिश
6.	जर्मनी	25,620	जर्मन	जर्मन
7.	ऑस्ट्रिया	25,430	जर्मन	जर्मन
8.	नीदरलैंड्स, दा	25,140	डच	डच
9.	फिनलैंड	24,730	फिन्निश	फिन्निश
10.	बेल्जियम	24,650	डच/फ्रेंच	डच/ फ्रेंच
11.	फ्रांस	24,170	फ्रेंच	फ्रेंच
12.	यूनाइटेड किंगडम	23,590	अंग्रेजी	अंग्रेजी
13.	ऑस्ट्रेलिया	20,950	अंग्रेजी	अंग्रेजी
14.	इटली	20,170	इटालियन	इटालियन
15.	कनाडा	20,140	अंग्रेजी/फ्रेंच	अंग्रेजी/फ्रेंच
16.	इजराइल	16,310	हिब्रू	हिब्रू
17.	स्पेन	14,800	स्पेनिश	स्पेनिश
18.	ग्रीस	12,110	ग्रीक	ग्रीक
19.	पुर्तगाल	11,030	पोर्तुगीज	पोर्तुगीज
20.	दक्षिणी कोरिया	8,490	कोरियन	कोरियन

* केवल 50 लाख से अधिक जनसंख्या (आँकड़ों का स्रोत : एनकार्टा इनसाइक्लोपीडिया)

उक्त तालिका में बहुसंख्यक लोगों की स्वीकृत प्रथम भाषा ही जनभाषा है। यहाँ सूचीबद्ध भाषाओं में पर्याप्त विभिन्नता है, जिसमें यूरोपीय भाषाओं का वर्चस्व है। उल्लेखनीय है कि सभी प्रमुख 20 धनी राष्ट्रों में सरकारी कामकाज की भाषा (एवं सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम) स्थानीय जनभाषा से भिन्न नहीं है। स्विट्जरलैंड जैसे राष्ट्र में भले ही अनेक जनभाषाएँ हैं, परंतु वहाँ भी

प्रमुख भाषा ही प्राथमिक शिक्षा का माध्यम है। इस प्रकार वहाँ वंशानुक्रम आधारित ऐसी वर्ग व्यवस्था नहीं है, जिसमें किसी औपनिवेशिक भाषा को महत्त्व दिया गया हो। उपर्युक्त सभी देशों में उच्चतम स्तर की शिक्षा जनभाषा में उपलब्ध है। इन 20 में से केवल 4 देशों में ही अंग्रेजी आधारित व्यवस्था है। शेष अधिकांश देशों में उच्चतर शिक्षा गैर-अंग्रेजी स्थानीय भाषाओं में बड़ी कुशलता के साथ चलती है। प्रमुख 20 देश केवल यूरोपीय भाषाओं तक ही सीमित नहीं हैं। जापान और कोरिया में विज्ञान सहित शिक्षा माध्यम हेतु अंग्रेजी जैसी किसी गैर-जनभाषा को नहीं चुना गया बल्कि वे अपनी निजी स्थानीय भाषा के प्रयोग द्वारा आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

स्विट्जरलैंड और इजराइल, दोनों ही बहुभाषी राष्ट्र हैं, परंतु वहाँ भारत जैसी स्थिति नहीं है। वहाँ कुछेक लोगों द्वारा बोली जानेवाली किसी विदेशी भाषा का वर्चस्व नहीं है। इजराइल द्वारा भाषा के चयन का विषय विशेष रूप से अनुकरणीय है। इस संबंध में हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।

निर्धन 20 देश

आइए, अब हम विश्व के 20 निर्धन राष्ट्रों की तालिका पर नजर डालें—

तालिका 2 : प्रति व्यक्ति जी.एन.पी. के आधार पर निर्धनतम राष्ट्र*

स्तर	*देश*	*प्रति व्यक्ति जी.एन.पी.*	*जनभाषा*	*राजभाषा*
1.	कोंगो (डी आर सी)	100	लिंगाला, किंग्वाना	फ्रेंच
2.	इथोपिया	100	अम्हारिक	अम्हारिक
3.	बुरुंडी	120	किरुंदी, स्वाहिली	फ्रेंच, किरुंदी
4.	सियरा लियॉन	130	मेंडे, तेमने, क्रिओ	अंग्रेजी
5.	मालावी	180	चिचेवा	अंग्रेजी, चिचेवा
6.	नाईजर	190	हौसा, द्जेर्मा	फ्रेंच
7.	चाड	210	सारा, अरबी	फ्रेंच, अरबी
8.	मोजंबीक	220	एमखुंवा, किसचंगाना	पोर्तुगीज
9.	नेपाल	220	नेपाली	नेपाली
10.	माली	240	बांबरा	फ्रेंच
11.	बुर्किना फासो	240	सूडानी भाषाएँ	फ्रेंच

12.	रवांडा	250	किन्यारवांडा	कन्यारवांडा, फ्रेंच, अंग्रेजी
13.	मेडागास्कर	250	मलागासी	फ्रेंच, मलागासी
14.	कंबोडिया	260	खमेर	खमेर, फ्रेंच
15.	तंजानिया	260	स्वाहिली	अंग्रेजी, स्वाहिली
16.	नाइजीरिया	260	हौसा, योरूबा, इग्बो	अंग्रेजी
17.	अंगोला	270	बंटू	पोर्तुगीज
18.	लाओस	290	लाओ	लाओ, फ्रेंच, अंग्रेजी
19.	टोगो	310	इवे, मीना, कबिये, दगोंबा	फ्रेंच
20.	यूगांडा	320	गांडा, लुगांडा	अंग्रेजी

* केवल 50 लाख से अधिक जनसंख्या (आँकड़ों का स्रोत : एनकार्टा इनसाइक्लोपीडिया)

इस तालिका में भी अधिकांशत: वही यूरोपीय भाषाएँ देखने को मिलती हैं। अंतर निस्संदेह स्पष्ट है। इन बीस देशों में आधे से अधिक देशों के लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषाएँ राजभाषा के रूप में स्वीकृत ही नहीं हैं। यद्यपि मालावी में चिचेवा जैसी भाषा सरकारी स्तर पर स्वीकृत है, तो भी सरकारी काम-काज और उच्च शिक्षा की भाषा प्राय: औपनिवेशिक भाषा है। उदाहरणार्थ, मालावी में कुल चार विश्वविद्यालयों में प्रमुख मालावी विश्वविद्यालय है। इसकी वेबसाइट पर विश्वविद्यालय कार्यों व उसमें प्रवेश के उद्देश्य से छात्रों के स्तर के आकलन हेतु परीक्षा का उल्लेख है। जिसके अंतर्गत विशेष रूप से अंग्रेजी भाषा का कौशल आँकने का प्रावधान है। स्वाभाविक है कि विश्वविद्यालय का स्तर केवल अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से ही प्रदर्शित किया जा सकता है, जबकि उस देश की भाषा चिचेवा में प्रवीणता अप्रासंगिक हो जाती है। यहाँ तक कि मालावी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर कहीं चिचेवा का उल्लेख तक नहीं है।

इसके विपरीत इजराइल की अपनी भाषा हिब्रू माध्यम वाली टेक्नीयन विश्व की प्रमुख तकनीकी संस्थाओं में से एक है। उसकी वेबसाइट पर स्पष्ट लिखा है कि राष्ट्र की जनभाषा हिब्रू है और टेक्नीयन में अध्ययन हेतु भाषीय माध्यम भी यही है। सर्दी अथवा वसंत शिक्षण पाठ्यक्रम सेमेस्टर स्वीकृत बाहरी विद्यार्थियों को अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व टेक्नीयन में 5 सप्ताह के

सघन भाषा पाठ्यक्रम में भाग लेना होगा। टेक्नीयन हिब्रू माध्यम को दृढ़तापूर्वक बढ़ावा देनेवाला एक विश्व स्तरीय तकनीकी संस्थान है। परंतु इसके बावजूद निर्धन देशों ने यह मिथ्या भ्रम पाला हुआ है कि अंग्रेजी और केवल अंग्रेजी ही विकास का आधार है।

निर्धन राष्ट्रों की इस तालिका में अधिकतर देशों में भारत की तरह ही श्रेणीगत वर्ग व्यवस्था है, जहाँ औपनिवेशिक शासकों की भाषा और संस्कृति को स्थानीय भाषाओं की तुलना में महत्त्व प्राप्त है। वहाँ उच्च शिक्षा, व्यापार, सरकारी और न्यायिक काररवाई बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा से भिन्न मुख्यतया औपनिवेशिक भाषा में संचालित होती है। उच्च वर्ग के लोग औपनिवेशिक भाषी विद्यालयों में जाते हैं और वहाँ की शब्दावली तथा विचारों से प्रभावित हो वैसे ही व्यवहार करते हैं, जिसके अंतर्गत स्वयं को श्रेष्ठ व स्थानीय भाषा के लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि निर्धन 20 राष्ट्रों की सूची में 6 देश ऐसे हैं, जहाँ राजकाज और उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी है, जबकि धनी राष्ट्रों के विषय में यह स्थिति केवल 4 देशों में है।

आँकड़े क्या कहते हैं?

हमारा तात्पर्य यह नहीं कि ये सब देश मात्र इस भाषाई वर्गीकरण के कारण से निर्धन हैं। सहसंबद्धता कारण को प्रमाणित नहीं करती। कारण को प्रत्यक्ष देखने के लिए हमें अधिक दूर देखने की आवश्यकता नहीं। निर्धन 20 देशों में से 19 यूरोपीय शक्तियों द्वारा शोषित उपनिवेश रहे हैं और बीसवाँ एक संरक्षित राज्य रहा है। अत: निस्संदेह यह एक महत्त्वपूर्ण घटक अथवा कारण है।

भाषाई दासत्व के अध्ययन के फलस्वरूप श्रेणी-भेद और दूरगामी आर्थिक-सामाजिक परिणामों के होते हुए भी यह स्पष्टत: एक महत्त्वपूर्ण विषय है। भाषा आधारित श्रेणी-भेद लोगों को अनेक प्रकार से आहत करता है—

1. इससे स्थानीय संस्कृति की तुलना में विदेशी संस्कृति को महत्त्व मिलता है। इससे लोगों के मूलभूत विश्वास और स्वाभिमान में कमी आने लगती है।
2. इससे देश की बौद्धिक और नीतिपरक मान्यताओं से टूटन जन्म लेने लगती है। औपनिवेशिक विश्वदर्शन के माध्यम से इस प्रकार की

गतिविधियाँ प्राय: औपनिवेशिक भाषा वाले वातावरण में चलती हैं।

3. समूची जनता को भिन्न भाषा से उच्च अध्ययन के पुनर्शिक्षण का खर्च उठाना पड़ता है। इससे स्थानीय भाषा में शिक्षित लोगों को प्रगति के लिए एक अदृश्य बाधा का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उपनिवेशवादी उच्च वर्ग अन्यों से ऊपर उठा रहता है और दूसरे लोगों के मन में उन्हीं के अनुकरण की महत्त्वाकांक्षाएँ पलती रहती हैं।

यह अत्यंत दु:खद बात है कि इस विषय पर चिंतन-मनन और विश्लेषण नहीं होता। उच्च वर्ग में अंग्रेजी को अपनाने की अपरिहार्यता की भावना बनी रहती है। यहाँ तक कि भारत में हाल ही की आर्थिक प्रगति को भी अंग्रेजी अपनाने से जोड़ा जाता है।

क्या व्यापार और व्यावसायिक सफलता का अंग्रेजी के साथ कोई संबंध है?

भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा को प्राय: प्रतिस्पर्धात्मक लाभों और हाल ही की आर्थिक प्रगति का आधार माना जाता है। ऐसे अभिमत को प्राय: स्वाभाविक सत्य के रूप में देखा जाता है। फिर यह धारणा इस स्तर पर व्याप्त है कि वास्तव में इसकी प्रामाणिकता के परीक्षण व अध्ययन की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की जाती। क्या वैश्विक व्यावसायिक सफलता अंग्रेजी के ज्ञान से जुड़ी है? उत्तर होगा—कदापि नहीं। ऊपर दी गई तालिकाओं में दिए आँकड़े और उनके विश्लेषण ऐसी मिथ्या धारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाते नहीं दिखते, तो आइए हम यहाँ कुछ विशेष उदाहरणों से इसका पुन: विश्लेषण करते हैं।

पूर्वी एशियाई मुख्य आर्थिक शक्तियाँ जापान, दक्षिण कोरिया, ताईवान सभी गैर-अंग्रेजी भाषी हैं। इन देशों में अन्यान्य उच्च शिक्षा की तरह व्यावसायिक विद्यालयों में भी अंग्रेजी नहीं बल्कि जापानी, कोरियन और चीनी भाषा चलती है। तथापि इन राष्ट्रों ने ऑटो-मोबाइल्स से उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक सभी क्षेत्रों में विश्व स्तरीय बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ होंडा, टोयोटा, सोनी, सैमसंग और अनेकों ऐसी कंपनियाँ दी हैं। एशिया की प्रमुख 1000 कंपनियों में से 792 इन्हीं 3 देशों से हैं। इनकी कुल बिक्री 4.5 ट्रिलियन डॉलर है। इनकी तुलना में भारत में प्रमुख 1000 कंपनियों में मात्र 20 कंपनियाँ ही हैं और इनकी कुल बिक्री इसका 2 प्रतिशत भी नहीं है।

जापान, दक्षिण कोरिया और ताईवान के किसी गाँव का कोई बच्चा डॉक्टर, इंजीनियर या सफल व्यावसायिक अगुआ बनने की आकांक्षा पूरी कर लेता है, क्योंकि शिक्षा माध्यम के रूप में इसके लिए उसे थोपी गई किसी बाहरी भाषा की बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता। फलस्वरूप इससे समूचे राष्ट्र की बौद्धिक क्षमता का दोहन संभव हो पाता है। उच्च स्तरीय भाषा-भेद वर्गीकरण से ग्रस्त राष्ट्रों की स्थिति इसके विपरीत है। भारत में ग्रामीण विद्यालयों के हाल ही में किए गए एक सर्वेक्षण के अंतर्गत हम हरियाणा के एक गाँव खंदोदरा में गए। वहाँ बौद्धिक क्षमता से संबंधित एक परीक्षण के तहत लगभग 33 प्रतिशत छात्रों ने 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त किए। वहाँ सभी बच्चे हिंदी माध्यम से पढ़नेवाले ही थे। विद्यालय के प्राचार्य ने बताया कि उन बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए अनायास अंग्रेजी वातावरण से होनेवाले परिवर्तन से इनकी बौद्धिक क्षमता पर आघात से उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। उन्होंने भाषा के विषय पर बोलते हुए आगे कहा, 'हम ग्रामीण क्षेत्र से हैं। यदि उच्च शिक्षा में भी देशी भाषी माध्यम की निरंतरता बनी रहती है तो हमारे बच्चे सफल हो सकते हैं। यहाँ के बच्चों में 8वीं से 10वीं कक्षा तक जाते हैं तो उनमें अंग्रेजी के कारण से एक हीन भावना आने लगती है। आगे के उच्च अध्ययन के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में भी उन्हें माध्यम के रूप में विदेशी अंग्रेजी की बाधा से निपटना पड़ता है।

ठीक इसी प्रकार इस धारणा, कि भारत की सॉफ्टवेयर की सफलता का कारण अंग्रेजी ज्ञान है, का विश्लेषण करना होगा। यदि यह सत्य है तो अंग्रेजी भाषी देशों को निरंतर इसका लाभ होना चाहिए था। विशेष रूप से केन्या जैसा देश, जो अंग्रेजी आधारित उपनिवेश और वर्गभेद के इतिहास का हिस्सा रहा है। चूँकि वहाँ अंग्रेजी में कार्य करनेवाली विशाल संख्या है, अत: उसे सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत की तुलना में अधिक सफल होना चाहिए था, परंतु वास्तविकता इससे भिन्न है। पुन: इजराइल, जहाँ हिब्रू और अरबी माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था है, वह भी इस सिद्धांत के खोखलेपन को उजागर करता है, क्योंकि उसने सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है।

इजराइल में 20वीं शताब्दी के दौरान विश्व भर से लोग आकर आबाद हुए। ये लोग भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते थे, तथापि इजराइल ने अपनी राज-काज की भाषा के लिए अंग्रेजी को नहीं बल्कि हिब्रू को चुना। हिब्रू एक ऐसी

भाषा थी, जिसे तब मृत अथवा शास्त्रीय भाषा कहा जाता था। हिब्रू को आधुनिकता के आधार पर विकसित किया गया। यह भारत में औपनिवेशिक पसंद अंग्रेजी के स्थान पर संस्कृत को सरकारी और संपर्क भाषा के रूप में चुनने के समान ही होगा। 'सॉफ्टवेयर अग्रदूत' के रूप में कथित प्रसिद्धि के बावजूद भारत ने 6.5 बिलियन डॉलर का कुल सॉफ्टवेयर निर्यात किया (वर्ष 2001 के आँकड़े)। भारत का सौवाँ हिस्सा (वास्तव में दिल्ली की आधी जनसंख्या से भी कम) इजराइल ने उसी अवधि में 2.5 बिलियन डॉलर का सॉफ्टवेयर निर्यात किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विश्व का प्रमुख अभियांत्रिकी संस्थान टेक्नीयन हिब्रू माध्यम का संस्थान है। जब मैं हैयफा, इजराइल में माइक्रोसॉफ्ट परिसर में गया, तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि माइक्रोसॉफ्ट कार्यालय के अंदर परस्पर वार्त्तालाप और संप्रेषण की भाषा न केवल हिब्रू थी बल्कि उन्हें संगणक पर हिब्रू के की-बोर्ड का ही व्यवहार करते पाया गया।

माइक्रोसॉफ्ट के सॉफ्टवेयर प्रबंधक के रूप में मैंने मेधावी प्रतिभाओं की खोज में विश्व भर से प्रतियोगियों के साक्षात्कार लिये। मेरे द्वारा चयनित कुछ लोग तो रूस से आए और उन्हें अंग्रेजी के ज्ञान के लिए नहीं चुना गया था। अधिकांश मामलों में उनका अंग्रेजी का ज्ञान इतना अधकचरा था कि उनके साक्षात्कार के लिए मुझे एक रूसी भाषी व्याख्याकार की व्यवस्था करनी पड़ी। मेरे द्वारा चयनित वे रूसी इंजीनियर सर्वश्रेष्ठ सॉफ्टवेयर इंजीनियरों में से थे।

भारत में उच्च शिक्षा अंग्रेजी पर केंद्रित होने से अपनी जनसंख्या का बहुत कम भाग बौद्धिक रूप से विकसित हो पाता है। हरियाणा के खंदोदरा के मेधावी बच्चे भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की चाहत में काँच की छत अर्थात् एक ऐसी अदृश्य बाधा से टकराते हैं, जो उन्हें आगे बढ़ने से रोकती है। भारत में यह स्थिति अंग्रेजी की अनिवार्यता नहीं बल्कि हमारी दोषपूर्ण सरकारी नीति से है। भारत में आई.आई.एम. में प्रविष्टि हेतु प्रवेश परीक्षा न केवल अंग्रेजी माध्यम से होती है बल्कि अंग्रेजी माध्यम की मौखिक योग्यता और पठनीय क्षमता उस परीक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहते हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय एवं राज्य के उच्च न्यायालयों में वकील व न्यायाधीश बनने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य है। एक डॉक्टर या इंजीनियर बनने के लिए सरकारी अनुदान से संचालित सर्वश्रेष्ठ संस्थाएँ अंग्रेजी माध्यम की हैं। भारत के अधिकारी वर्ग अथवा नौकरशाहों के चयन हेतु लोक सेवा परीक्षाओं

से उत्तीर्ण होने के लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता बनी हुई है।

अंग्रेजी वर्ग व्यवस्था इस प्रकार न केवल सामाजिक क्षेत्र बल्कि बतौर सरकारी नीति बरकरार है। भारतीय भाषाएँ गौण हैं और अंग्रेजी का प्राधान्य है, यह संदेश स्पष्ट तौर पर मुखर है। आप निचली अदालतों में भारतीय भाषाओं का प्रयोग कर सकते हैं, परंतु उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी चलेगी। आप भारतीय भाषाओं से परीक्षा देकर सेना में एक सैनिक या जवान बन सकते हैं, परंतु एक अधिकारी होने के लिए परीक्षा अंग्रेजी में देनी होगी।

औपनिवेशिक मानसिकता और बोध सरकार प्रदत्त भेदभाव भाषाई वर्गभेद में परिवर्तित होता है। यही स्थिति अंग्रेजी के स्वाभाविक वर्चस्व और अपरिहार्यता को जन्म देती है। इस विषय पर दिए जानेवाले तर्कों को प्रगति पर पिछड़ेपन व आर्थिक उन्नति पर उग्र राष्ट्रवाद (या क्षेत्रवाद) को प्राथमिकता देने के अर्थों में लिया जाता है। जबकि वास्तविकता इससे परे है। अधिकांश भारतीयों पर उच्च शिक्षा हेतु अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता थोपना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक बोझ है। यह बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों के बौद्धिक विकास में बाधा है। इससे आर्थिक विकास मंद पड़ता है और निरंतर दौर्बल्य व भेदभाव की चरम स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार अंग्रेजी एक ऐसी भाषा के रूप में उभरकर सामने आती है, जो भारत की प्रगति की बजाय पिछड़ेपन का कारण बनकर सामने आती है।

निष्कर्ष

अंग्रेजी अपनाने को भारतीय भाषाओं के उन्मूलन की प्रक्रिया में इसके सांस्कृतिक अवमूल्यन की प्राय: आलोचना होती है। फिर भी आर्थिक उन्नति के नाम पर प्राय: इसके प्रयोग को उचित ठहराया जाता है। बड़े पैमाने पर विदेशी भाषा अपनाने से होनेवाले सांस्कृतिक अवमूल्यन के अतिरिक्त अंग्रेजी शिक्षा के आर्थिक आधार के तर्क को भी हमें आलोचनात्मक ढंग से विचारना होगा। अंग्रेजी की अपरिहार्यता के तर्क प्राय: विकास और प्रगति की वकालत के नाम पर दिए जाते हैं। इस लेख के द्वितीय भाग में अंग्रेजी की अनिवार्यता के इन तर्कों को हम भारतीय समाज में वर्तमान अंग्रेजी वर्ग प्रथा और इसके ऐतिहासिक मूल के साथ जोड़कर देखेंगे।

□

भारत में अंग्रेजी, औपनिवेशिक मानसिकता

हमारे विद्यालयों व विश्वविद्यालयों में केन्या की भाषाएँ हमें पिछड़ेपन, अविकास, ग्लानि और दंड का बोध कराती हैं। हममें से जो उस विद्यालयी व्यवस्था से गुजरे, वह इन भाषाओं के लोगों, संस्कृति और मूल्यों के प्रति घृणा तथा अपमान का बोध लिये हुए थे। नगुई व थियोंगो (अफ्रीकी साहित्य में भाषाई राजनीति। मानसिक उपनिवेशीकरण से मुक्ति)

अंग्रेजी माध्यम के स्कूल व कॉलेजों से शिक्षित भारतीय बुद्धिजीवी और उच्च अधिकारी वर्ग, पूर्व में बताए गए तथ्यों में तर्क देख पाने में असमर्थ, प्राय: इस भ्रम में रहते हैं कि व्यावसायिक उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी ही उपयुक्त एवं इसीलिए अनिवार्य माध्यम है। उपर्युक्त विश्लेषण से निकले अकाट्य तथ्यों के बावजूद ऐसा मानना कि जापानी, हिब्रू अथवा तुर्की की तरह हिंदी या तमिल माध्यम से कोई योग्य डॉक्टर, इंजीनियर या व्यावसायिक बन सकता है, वर्तमान भारतीय मन:स्थिति को स्वीकार्य नहीं होता। यह एक विडंबना है। अंग्रेजी की मिथ्या श्रेष्ठता का भाव भी भारतीय समाज में भेदभाव को दरशाता है। बोल-चाल के अंग्रेजी उच्चारण के स्तरानुसार समाज में वर्ग-भेद की स्थिति शोचनीय है। कॉन्वेंट स्कूल के अंग्रेजी उच्चारणवाले वर्ग को सर्वोच्च स्थान पर रखा जाता है, जबकि उनकी तुलना में निजी या सरकारी स्कूलों में पढ़े एवं कम संशोधित अंग्रेजी बोलनेवालों को द्वितीय स्थान पर रखा जाता है। अंग्रेजी उच्चारण में स्वयं को असहज पानेवालों को असभ्य या अनपढ़ मानकर समाज में सबसे नीचे के पायदान पर धकेल तिरस्कृत किया जाता है। नौकरी

के मामले में गैर कॉन्वेंट पृष्ठभूमि के कॉलेज से निकले स्नातक अपने कार्य में पूर्णतया सक्षम होने के बावजूद साक्षात्कार के दौरान मुझसे अपने प्रति भेदभाव की शिकायत करते रहे हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसी से अंग्रेजी और कॉन्वेंट शिक्षा की माँग में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई, जिसकी हमने भाग I में चर्चा की है। अंग्रेजी भाषीय उच्च शिक्षा के पक्ष में भेदभावपूर्ण सरकारी नीति इस माँग का मुख्य कारण है, अर्थात् यह सरकारी नीति ही मुख्य रूप से इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है।

हम यहाँ स्पष्ट करना चाहेंगे कि हमारा आशय अंग्रेजी पढ़ने या इसे अच्छी तरह से बोलने का विरोध करना नहीं है। समस्या तब होती है, जब भाषा का माध्यम सामान्य जनभाषा को नकारकर अंग्रेजी कर दिया जाता है। समस्या तब होती है, जब अंग्रेजी का उच्चारण मात्र वर्ग-भेद को इंगित करने लगता है, या फिर जब व्यावसायिक उच्च शिक्षा के साथ-साथ नौकरियों में जनभाषाओं के विरुद्ध भेदभाव की प्रकृति देखने को मिलती है। एक जापानी अंग्रेजी को द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में सीखने के लिए उद्यत होता है तो वह इसे उत्सुकतावश अमरीकी मोह की पूर्ति के साथ व्यापार अथवा यात्रा के उद्देश्य से करता है, परंतु यह अंग्रेजी जापानी समाज में वार्त्तालाप से सामाजिक श्रेणी-भेद का कारण नहीं बनती। उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए जापानी लोग स्वयं को अंग्रेजी माध्यम में परिवर्तित नहीं करते।

तानाशाही के मुखौटे

भारतीय भाषाओं में लिखित और मौखिक साहित्य अत्यंत विकसित शिक्षा का इतिहास है। श्री धर्मपाल द्वारा उनकी पुस्तक 'दि ब्यूटीफुल ट्री' में प्रारंभिक ब्रिटिश काल अथवा उससे पूर्व के समय का चित्रण बड़े परिश्रम के साथ संगृहीत किया गया है। इस पुस्तक से भारत में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यापक व्यवस्था का पता चलता है। उदाहरणस्वरूप मद्रास हेतु उपलब्ध प्रारंभिक ब्रिटिश रिकॉर्ड के विस्तृत परीक्षण के अनुसार धर्मपाल (1995:20) इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मद्रास प्रेसीडेंसी जिले में 1822-25 की अवधि की जर्जर अवस्था में भी विद्यालयों की उपस्थिति 1800 में इंग्लैंड के विभिन्न विद्यालयों की कुल संख्या से अधिक थी। भारतीय स्कूलों की स्थिति इंग्लैंड से अधिक स्वाभाविक और कम गंदगी वाली थी। भारतीय

स्कूलों में अध्यापक अधिक समर्पित और सौम्य थे। महाविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत और फारसी भाषा चलती थी। उच्च शिक्षा में मेडिकल साइंस (आयुर्विज्ञान), काल-ग्रह गणना, ज्योतिष-विद्या और विधि के विषय भी सम्मिलित थे।

प्रश्न उठता है कि हम फिर शैक्षिक पिछड़ेपन और उच्च व्यावसायिक शिक्षा हेतु भारतीय भाषाओं की अप्रासंगिकता की स्थिति में कैसे पहुँचे? कोलंबिया विश्वविद्यालय की गौरी विश्वनाथन ने अपनी पुस्तक 'विजय के मुखौटे' में भारत में अंग्रेजी भाषा और साहित्य की स्थापना पर अपने अध्ययन की अभिव्यक्ति की है। भारत में अंग्रेजी भाषी उच्च वर्ग की स्थापना हेतु त्रिपक्षीय नीति अपनाई गई—

1. स्थानीय शिक्षा का विनाश और उसकी आलोचना व निंदा करना।
2. सरकारी उच्च वर्ग का अंग बनने के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता।
3. केवल अंग्रेजी की स्थापना अर्थात् स्थानीय भाषी विद्यालयों में अंग्रेजी के पठन-पाठन को बंद कर अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की स्थापना।

भाषा और साहित्य किसी भी राष्ट्र की संस्कृति के मुख्य वाहन होते हैं। किसी भी राष्ट्र को उसकी भाषाओं और साहित्य से विमुख कर औपनिवेशिक आक्रमण से स्थानीय अनुभव के विरुद्ध अज्ञान और अपमान को प्रोत्साहन मिलता है। इसके साथ-साथ स्थानीय पायदान पर अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से एक आदर्श अंग्रेज की छवि को स्थापित किया गया। इससे स्थानीय गोरे-साहबों के एक वर्ग की उत्पत्ति हुई, जो अपने सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा अंग्रेजी ज्ञान और मूल्यों के प्रति अधिक सहज होते गए तथा जिन्होंने अपनी तथाकथित उच्चवर्गीय सामाजिक और साहित्यिक पहचान बनाई। उन्होंने अंग्रेजों के अनुकरण पर गैर-अंग्रेजी भाषी स्थानीय लोगों के प्रति भी हेय दृष्टि अपनाई।

मैकाले के साले चार्ल्स ट्रेवेल्यान, जो एक समय जन निर्देश महा परिषद् के अध्यक्ष थे, ने गर्व के साथ यह कहा था कि शिक्षित भारतीय हमारे से भी अधिक शुद्ध अंग्रेजी बोलते हैं, क्योंकि वे इसे आदर्श व्यक्तियों से सीखते हैं। वे अंग्रेजी एक दर्शक की भाषा के रूप में ऐसी बोलते हैं, जैसी इंग्लैंड में कभी नहीं बोली जाती। यदि कोलकाता के लोग एक दर्शक की भाषा बोलते हैं तो यह मात्र संयोग नहीं है, क्योंकि 'कोलकाता जर्नल' और समाचार-पत्रों के संपादक भी इच्छापूर्वक कैंडीडस, वीरैक्स, ओन्योरोपोलोस और फ्लैकस जैसे

छद्म नामों से एडिसोनियन शैली में लिखते हैं। उनके विषयों का भारतीय जन-जीवन से दूर-दूर का भी संबंध नहीं रहता। उदाहरण के रूप में इंग्लैंड में आजकल फैशन के तौर-तरीके, काल्पनिक उड़ान, शिष्टाचार और नैतिकता। (विश्वनाथन, 1998;115)

आज के भारत में कॉन्वेंट शिक्षित वर्ग और अंग्रेजी भाषी लेखकों में एक भिन्न रूप व स्तर देखा जा सकता है। जब अधिकतर अंग्रेजी भाषी लेखक भारतीय अनुभवों की प्रस्तुति करते हैं तो यह विदेशी मानव शास्त्र जैसा लगता है। ऊपर से स्थानीय रीति-रिवाजों के प्रति उनका दृष्टिकोण मानसिक दासत्व को पूर्णता प्रदान करता है।

अंग्रेजी शिक्षा के विविध उद्देश्य हैं—एक तो यह कि प्रशिक्षित नौकरशाहों का एक वर्ग तैयार करना, जो जनता पर शासन कार्य चला सके। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्कृति की निंदा और विदेश प्रेम के मिश्रण वाली शिक्षा के द्वारा एक बौद्धिक श्रेष्ठता स्थापित करना तथा इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि इसी तथाकथित उच्च वर्ग को विजित की अपेक्षा विजेताओं के मूल्यों से जोड़कर देखना।

वर्तमान उच्च वर्ग के निर्माण का यह मिशन जिस सीमा या स्तर तक सफल हुआ है, यह अपने आप में एक अध्ययन का विषय है। कुछ प्राच्यविदों ने सरकारी नीति के आधार पर भाषाई वर्गभेद स्थापित करने और स्थानीय साहित्य के विलोपन या विनाश का विरोध किया है।

स्थानीय साहित्य पर गर्व और आनंद-बोध के स्रोत की समाप्ति अर्थात् साहित्य के विनाश, सभी लोगों को उनके विचारों के लिए एक दूरस्थ और अज्ञात राष्ट्र की संस्कृति पर उन्हें निर्भर बनाकर तथा शब्दों से ढाँककर हमें उनके चरित्र का अवमूल्यन करना चाहिए। उनकी ऊर्जा को दबाना चाहिए और किसी बौद्धिक विशेषता को प्राप्त करने के अयोग्य बना, छोड़ देना चाहिए।

प्राच्यविदों द्वारा भारतीय साहित्य के प्रकट रूप से अध्ययन करने पर भी ब्रिटिश वर्चस्व अथवा श्रेष्ठता को स्थापित करने में वे भी समान रूप से अपराधी रहे थे। विश्वनाथ (1998:167) के अनुसार,"'अधीनस्थ जनसंख्या के शिक्षण हेतु एक पाठ्यक्रम प्रणाली का समावेश होने पर भी वह प्रशासनिक गतिविधि का एक अंग रही"'आंग्लवादी (एंग्लीसिस्ट) और प्राच्यविद्, दोनों पक्ष पाश्चात्यवाद की प्रमुख परियोजना में समान रूप से अपराधी रहे। इस प्रकार ब्रिटिश शासन का आधिपत्य स्थापित करने व भारत में ब्रिटिश शिक्षा का

सूत्रपात किया गया।

ध्यान रहे कि ब्रिटिश प्रशासकों ने अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों के अतिरिक्त अन्य स्कूलों में अंग्रेजी को भाषा के रूप में पढ़ाने पर रोक लगा दी थी। 1835 में अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम के समय स्थानीय भाषा विद्यालयों से अंग्रेजी हटा दी थी। इसके पीछे सोच यह थी कि शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थानीय भाषा को रखने से अंग्रेजी को केवल एक भाषा के स्तर पर पढ़ा जाएगा और उस स्थिति में स्थानीय लोग स्वभाषा के माध्यम से विकसित होंगे। फलस्वरूप वे ब्रिटिश को आलोचनात्मक दृष्टि से देखेंगे और इससे ब्रिटिश व्यवस्था की वास्तविकता को पहचानने लगेंगे। औपनिवेशिक ढाँचे में निष्पक्षता की प्रतिभूति स्वरूप दिखाए जानेवाले ब्रिटिश के यथार्थ को जान लेंगे। इसीलिए औपनिवेशिक मिशन के हित में अंग्रेजी आधारित वर्ग व्यवस्था स्थापित करने और स्थानीय मन:स्थिति को प्रभावित करने के उद्देश्य से शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन किया गया।

समवर्ती भारत में विश्वविद्यालय व्यवस्था की भूमिका

ब्रिटेन द्वारा लंदन यूनिवर्सिटी की तर्ज पर भारत में कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य बुद्धिजीवी वर्ग को अपने ढंग से प्रशिक्षित करना था। इस प्रकार की गतिविधियाँ औपनिवेशिक मिशन का ही अंग था। मैकाले के उत्तराधिकारी चार्ल्स कैमेरान ने केंद्रीय विश्वविद्यालय व्यवस्था हेतु सशक्त अभियान के अंतर्गत भारत की शास्त्रीय भाषाओं संस्कृत, अरबी और फारसी के संपूर्ण निष्कासन का आह्वान यह कहते हुए किया कि ये गैर-ईसाई धार्मिक विचारधारा के साथ घनिष्ठता के साथ जुड़े हुए हैं। (विश्वनाथन, 1998 : 113)

यद्यपि भारतीय शास्त्रीय भाषाओं और ग्रंथों का अध्ययन प्राच्य विद्या अध्ययन के अंतर्गत था, परंतु यह सत्ता और नियंत्रण की श्रेष्ठता एवं आधिपत्य को बनाए रखने का ही एक हिस्सा था। जब प्राच्यविद् होरेस विल्सन ने स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के लिए अपना तर्क दिया तो उन्होंने पंडितों व मौलवियों को पाश्चात्य ग्रंथों के अनुवाद के लिए साथ में लेने को कहा। विश्वनाथन (1998 : 113) बताते हैं कि विल्सन ने भीतर से विनाश की ट्रोजन हॉर्स वाली रणनीति को संशोधित किया, ताकि भारतीय शिक्षा के परंपरावादी लोग भी

हमारी सत्ता में अतिरिक्त रूप से सहायक हो सकें। बौद्धिक मूल्यों, नैतिकता और धर्म के स्रोत के रूप में प्राच्य भाषाओं व साहित्य के स्थिरीकरण के अर्थ में यदि हम एक सीमा तक विल्सन के तर्क को स्वीकार कर भी लेते हैं, तो भी बैंटिक प्रशासन या अन्य किसी प्रशासन ने प्राच्य अध्ययन के प्रति उसकी इच्छा का अनुसरण नहीं किया।

स्थानीय साहित्य के विनाश के साथ अनेक ब्रिटिश प्रशासकों ने उदार शिक्षा के नाम पर अपनी प्रजा पर नियंत्रण बनाए रखने के उद्देश्य से अंग्रेजी साहित्य में इसका अप्रत्याशित सहयोगी खोज लिया। इन विश्वविद्यालयों में उच्च अंग्रेजी वर्ग को बनाए रखने के ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा सुनियोजित प्रयासों की सफलता उनमें आज भी देखी जा सकती है, जिनकी बौद्धिक जड़ें पाश्चात्य सभ्यता से जुड़ी हैं। अपने आकाओं द्वारा दी गई शिक्षा के अनुसार वे अपने स्वयं के इतिहास के प्रति नकारात्मक हठधर्मिता एवं दक्षता प्राप्त वे मनोवैज्ञानिक तौर पर अपनी निजी मौलिकता पर प्रहार करते हुए उससे दूरी बनाए रखना उचित मानते हैं।

जब गुलाम (दास) अपने शासकों की मानसिकता के साथ तादात्म्य बना लेते हैं तो उनकी मानसिक गुलामी की पूर्णता स्पष्ट हो उठती है। मन की यही प्रकृति गुलाम कहलाती है। निस्संदेह, यह अनुभव केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। अतः आइए, हम विस्तृत एवं अतिरिक्त परिदृश्य को समझने के लिए अफ्रीकी स्थिति का विश्लेषण करें।

मानसिक परतंत्रता से मुक्ति, नगुई व थियोंगो

भारतीय विद्यालयों में पढ़ाए जानेवाला विश्व इतिहास प्रायः यूरोप और अमेरिकी इतिहास तक सीमित है। समवर्ती भारतीय अनुभवों पर प्रकाश डालने के लिए अधिक उपयोगी होगा—यूरोपीय इतिहास से पहले दक्षिणी अमेरिका के इतिहास और उनके औपनिवेशिक अनुभवों पर दृष्टि डालना। अफ्रीकी बुद्धिजीवी नगुई व थियोंगो ने केन्या में परतंत्रता अथवा औपनिवेशिक ढाँचे से स्वयं को पूर्णतया मुक्त रखने का निर्णय लिया।

थियोंगो केन्या के एक लोकप्रिय लेखक हैं, जिन्होंने अपना लेखन कार्य अंग्रेजी में आरंभ किया था; परंतु शीघ्र ही सांस्कृतिक बम के प्रभाव को उन्होंने समझा और विशेष रूप से अपनी लेखनी को स्थानीय भाषा 'गिकियु' की तरफ

छोड़ दिया। 'डीकोलोनाईजुंग दा माइंड' अर्थात् 'उपनिवेशवाद से मन की मुक्ति' अंग्रेजी भाषा में लिखी उनकी अंतिम पुस्तक है, जिसमें वे सांस्कृतिक बम की व्याख्या विस्तार के साथ करते हैं।

सांस्कृतिक बम सबसे बड़ा शस्त्र है, जो दिन-प्रतिदिन छोड़ा और चलाया जाता है। संस्कृति बम का प्रभाव लोगों के अपने नाम, भाषा, वातावरण, संघर्ष परंपरा, अपनी एकता, अपनी क्षमताओं और अंतत: अपना अपनत्व—सबकुछ समाप्त कर देता है। यह उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है, जहाँ उन्हें अपने अतीत की उपलब्धियाँ बंजर भूमि के सदृश दिखाई देती हैं और वे तथाकथित बंजरभूमि से दूरी बनाने को प्रेरित होते हैं। सर्वस्व हारने की यह स्थिति उन्हें नई एवं भिन्न पहचान देती है। उदाहरणतया अपनी भाषा की बजाय दूसरों की भाषा से जुड़ जाना। (थियोंगो, 1986)

थियोंगो (1986 : 7) लिखते हैं कि हमारे साहित्य से अंग्रेजी की न हट पानेवाली स्थिति का एक ऐसा घातक तर्क है, जो समूचे वर्ग को किसी और भाषा में नहीं बल्कि औपनिवेशिक भाषा में ही लिखने व पढ़ने तक सीमित रखता है। स्थानीय संस्कृति विषयक लेखन में सम्मिलित रहने पर भी इसकी प्रस्तुति ऐसी रहती है, मानो यह विजेताओं के समक्ष उनकी स्वीकृति के लिए हो या फिर संग्रहालय की किसी आकर्षक वस्तु की तरह चकित करने के लिए हो। इसकी शैली अंग्रेजी में लिखे जानेवाले भारतीय लेखों की सी रहती है। इस प्रकार स्थानीय संस्कृति या तो औपनिवेशिक आकाओं (मास्टर, स्वामी) के आनंद, स्वयं के अपमान या फिर मनोरंजन की वस्तु के रूप में प्रस्तुत की जाती है, जो मालिक के दृष्टिकोण के लिए कभी भी चुनौती नहीं हो सकती। थियोंगो मानते हैं कि अंग्रेजी भाषा में लेखन कार्य स्थानीय भाषा नहीं बल्कि अंग्रेजी जगत् की भाषा और संस्कृति को समृद्धि देता है। ऐसा साहित्य निरंतर स्थानीय संस्कृति से चोरी कर मास्टर-की संस्कृति की श्रीवृद्धि करता है। थियोंगो के अनुसार, ऐसी स्थिति में जो लक्षण सामने आते हैं, उनमें आश्रितों द्वारा प्रशंसा, भजन-गान करना और इस कार्य को निरंतर पवित्र चोरी कहना।

थियोंगो (1986 : 28) केन्या में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल और यूनिवर्सिटी में अपनी पढ़ाई की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जहाँ बच्चों में मातृभाषा का प्रयोग वास्तव में नकारा जाता था और अंग्रेजी के अतिरिक्त कुछ भी बोलने पर उन्हें दंडित किया जाता था।

स्कूलों और यूनिवर्सिटियों में केन्या की अपनी बहुराष्ट्रीय भाषाओं को पिछड़ेपन, अविकास, अपमान और दंड के साथ नकारात्मक ढंग से जोड़कर देखा जाता था। उस स्कूली व्यवस्था में हम लोग अपने दैनिक अपमान और दंड के भाषाई मूल्यों, लोगों और संस्कृति के प्रति घृणा के बोध के साथ शिक्षित किए जाते थे।

थियोंगो भाषा और संस्कृति के बीच संबंधों की बात करते हैं। भाषा की दो भूमिकाएँ हैं—संवाद का माध्यम और संस्कृति का वाहन। अंग्रेजी संवाद का माध्यम तो बन सकती है, परंतु स्थानीय संस्कृति के मुख्य वाहन का कार्य नहीं कर सकती। इसी तथ्य को ही भारत में ब्रिटिश प्रशासकों ने गहनता के साथ अनुभव किया। उदाहरण के रूप में यह देखा कि जिस प्रकार भारतीय भाषाओं की शब्दावली भारतीय दर्शन और धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत है, ठीक उसी तरह अंग्रेजी शिक्षा ईसाई मत के संदर्भों से परिपूर्ण है।

ब्रिटिश सांसद एडवर्ड थोरंटन ने तो यहाँ तक कहा था कि जैसे ही भारतीय प्रथम दर्जे के यूरोपीय विद्वान् बनेंगे, वे हिंदू नहीं रहेंगे।

भारतीय संस्कृति इस साहसिक कथन के साथ आज भी संघर्षरत है। सांस्कृतिक पतन और विनाश की यह क्षमता हमें अंग्रेजी भारत के शैक्षणिक, पत्रकारिता और कथा साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है।

जैसाकि थियोंगो (पृ. 15) आगे कहते हैं, 'भाषा बच्चे के मन पर निस्संदेह छवि निर्माण का कार्य करती है। संस्कृति के रूप में भाषा इस प्रकार मेरे और मेरे अपने निजीपन में, मेरे अपने और अन्य लोगों के बीच, मेरे और मेरे स्वभाव के बीच मध्यस्था का कार्य करती है। भाषा भले ही सार्वभौमिक है, परंतु इसके द्वारा अपनाए जानेवाली ध्वनियाँ और संकेत तथा भाषाई विशिष्टता सांस्कृतिक अनुभव के वैशिष्ट्य को प्रतिबिंबित करते हैं। इस प्रकार सार्वभौमिक स्तर पर भाषा के द्वारा संस्कृति विशेष प्रभावित नहीं होती, परंतु विशेष इतिहास के साथ किसी विशेष समुदाय की भाषा अपनी विशिष्टता के कारण संस्कृति को प्रभावित करती है।'

औपनिवेशिक बच्चा बाह्य और आंतरिक जगत् के बीच द्विभागीकरण का जीवन जीने को बाध्य होता है, घर और स्कूल में बोली जानेवाली भाषा, बोल-चाल की भाषा और बाह्य रूप से लेखनी की भाषा का दोहरापन तब तक झेलता है, जब तक वह धीरे-धीरे निश्चित रूप से सोचना आरंभ करता है और

औपनिवेशकों की आँखों से अपनी दुनिया को देखने लगता है। जैसाकि थियोंगो (पृ. 17) बताते हैं—'एक औपनिवेशिक बच्चे के लिए संवाद के स्तर पर भाषा के तीनों पक्षों के बीच सामंजस्य स्थायी तौर पर टूट गया था। उसका परिणाम यह हुआ कि उस बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से उसकी संवेदनशीलता छिन जाती है। इसे हम 'औपनिवेशिक अपहरण' कह सकते हैं। यूरोप सदैव विश्व के केंद्र के रूप में रहा है, जहाँ इतिहास, भूगोल और संगीत की शिक्षा के माध्यम से यह अपहरण और भी पुष्ट होता है।'

थियोंगो (पृ. 28) कहते हैं कि अध्ययन के प्राथमिक माध्यम के रूप में विदेशी माध्यम का अंतिम प्रभाव वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर औपनिवेशिक दूरी होता है। औपनिवेशिक दूरी के एक-दूसरे से जुड़े हुए दो रूप होते हैं—अपने चारों ओर की वास्तविकता से अपनी सक्रिय (अथवा निष्क्रिय) दूरी बना लेना और सक्रिय (अथवा निष्क्रिय) रूप से अपने से बाहरी परिवेश से स्वयं को जोड़ लेना। यहाँ से आरंभ होता है अवधारणा, सोच, औपचारिक शिक्षा और मानसिक विकास की भाषा से घर व समाज में बातचीत की भाषा के बीच स्वेच्छापूर्वक दूरी बनाना। यह मन-मस्तिष्क को शरीर से पृथक् कर देने की सी स्थिति है। मानो एक ही व्यक्ति में दो असंबद्ध भाषाई क्षेत्र व्याप्त हों! बड़े सामाजिक स्तर पर यह ऐसे है, जैसे बिना शरीर के सिर या फिर बिना सिर के शरीर।

यह संभवत: इसी असंबद्धता का ही परिणाम है कि बहुसंख्यक अधिकारी वर्ग और शिक्षाविद् भारत में सामाजिक समस्याओं पर बहुत कुछ लिख सकते हैं, परंतु वह सामाजिक समस्याएँ सदैव बनी रहती हैं और उनका निराकरण नहीं हो पाता। व्यवहार में शिक्षाविद् अपने अध्ययन में समाज से पूर्णतया कटे रहते हैं। उनका अध्ययन व्यक्तिगत रूप से अधिकृत अनुभव से विहीन औपनिवेशिक दृष्टिकोण से औपनिवेशिक श्रेणी का ही रहता है। इन्हीं अध्ययनों को आधार बनाकर सरकारी नीतियाँ बनती हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था अधिकारी तंत्र, दिशाहीन कार्यकर्ताओं और गैर-सरकारी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) द्वारा इन्हें लागू किया जाता है। परिणामस्वरूप भारतीय समाज और इसके पिछड़ेपन से संबंधित स्थायी निराशा का वातावरण बना रहता है। बहुत संभव है कि समस्या वास्तव में उसे देखने-समझने में ही हो। समाज को देखने की प्रक्रिया और समस्या से निदान—यह सब विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है।

थियोंगो (पृ. 28) संक्षेप में औपनिवेशिक उच्च वर्ग के वर्तमान व्यवहार को औपनिवेशिक संस्थाओं और भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में दरशाते हैं कि जब शासित वर्ग शासन प्रणाली का गुणगान करने लगता है तो इसे 'शासन की अंतिम विजय' कहा जा सकता है। वास्तव में आज भारत में यही स्थिति है। जिस प्रकार आर्थिक सफलता का श्रेय अंग्रेजी को दे दिया जाता है, उसी प्रकार सभी सही परिणाम स्वतः यूरोपीय विजेताओं की सभ्याचारक शक्ति से जोड़ दिए जाते हैं, जबकि सभी समस्याओं का आरोप स्थानीय संस्कृति पर थोप दिया जाता है, जो हमेशा पिछड़ेपन का कारण भी समझी जाती है।

अपने संपूर्ण लेखन को अंग्रेजी से स्थानीय भाषा में परिवर्तित करनेवाले थियोंगो जैसे लोकप्रिय लेखक भारत को अभी नहीं मिल पाए। अपनी नई पुस्तक 'विज़ार्ड ऑफ क्रो' (कौवे की बुद्धिमत्ता) के विमोचन के अवसर पर सीऐटल में हाल ही में आयोजित एक कार्यक्रम में थियोंगो ने कहा कि उसकी पुस्तक के सर्वश्रेष्ठ तीन शब्द प्रारंभ में ही लिख दिए गए हैं—'गिकियु से अनूदित'।

भारतीय मनीषा की उपनिवेशवाद से मुक्ति

यद्यपि यह लेखन अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से संबंधित है, तथापि हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि अंग्रेजी भाषीय उच्च शिक्षा एकमात्र वर्गभेद का कारण अथवा स्रोत है। केवल भाषा परिवर्तन और अंग्रेजी में वर्तमान लिखित सामग्री को भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से हम स्वतः अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ पाएँगे, ऐसा नहीं है।

बाह्य संवाद के लिए अंग्रेजी सीखने और उच्च वर्गीय विद्यालयों तथा उच्च शिक्षा हेतु अंग्रेजी के व्यवहार में विशेष अंतर है। अंग्रेजी को एक भाषा के रूप में सीखना आज सशक्तीकरण का एक माध्यम हो सकता है और इस दृष्टि से इसे प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए, परंतु इसे जब उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो इसके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं। इससे समाज से हटकर एक उच्च वर्गीय श्रेणी जन्म लेती है, जो अनुमानित लाभ लेने के लिए प्रभावशाली होती है।

एक सोची-समझी सरकारी नीति के परिणामस्वरूप ही यह स्थिति पैदा हुई है और इसलिए एक सुविचारित सरकारी नीति से ही इसका समाधान हो

सकता है। ब्रिटिश शासन की परंपरा के अनुसार ही सरकार द्वारा समर्थन प्राप्त संस्थाओं से उपनिवेशवाद स्थायी रूप से स्थापित है और इसके दुष्प्रभावों के उपचार के लिए बदलाव लाना होगा। एक नई भाषा नीति की ओर हम यहाँ पर कुछ विचारणीय बिंदुओं पर चर्चा करेंगे। सरकारी संस्थाओं और शिक्षा के माध्यम स्वरूप अंग्रेजी को बदलने की दृष्टि से मलेशिया का ताजा उदाहरण हमारे सामने है, जो हमारे अध्ययन के लिए उपयोगी होगा। यह परिवर्तन स्वतः प्रेरणा से होना चाहिए, जहाँ भारतीय भाषाओं के प्रति आग्रह हो, माँग हो, न कि लोगों पर भारतीय भाषाएँ सीखने हेतु दबाव के द्वारा। वर्तमान परिस्थितियों में उच्च और व्यावसायिक शिक्षा एवं नौकरियों के लिए भारतीय भाषाओं का माध्यम अनुपलब्ध प्रायः है।

भारतीय भाषाओं के लिए माँग के बल पर परिवर्तन की स्थिति में भारतीय सेना व आई.आई.एम. हेतु प्रवेश परीक्षाओं, जो अभी तक अंग्रेजी की पक्षधर हैं, द्वारा अधिकारियों के चयन हेतु उन परीक्षाओं का व्यापक अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार मलेशिया ने न्यायपालिका में अंग्रेजी के स्थान पर स्थानीय भाषा लागू करने हेतु बड़े स्तर पर परिवर्तन किए। भारत में उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी का प्राधान्य है। परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं में प्रवीणता होने पर भी वे इन कार्यालयों में कार्य करने में असमर्थ हैं। लोक सेवा परीक्षाओं में अंग्रेजी परीक्षा की अनिवार्यता समाप्त होनी चाहिए। नौकरी के लिए अंग्रेजी में प्रवीणता अनावश्यक होनी चाहिए, भले ही यह लोक सेवा और सैन्य अधिकारियों की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् प्रशिक्षण के अंतर्गत रहे।

प्रबंधन, अभियांत्रिकी, मेडिकल और अन्य उच्चस्तरीय व्यावसायिक शिक्षा भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होनी चाहिए। व्यावसायिक और उच्च शिक्षा हेतु अंग्रेजी की बाध्यता के कारण ही प्राथमिक व उच्च स्तर पर अंग्रेजी की माँग बढ़ रही है। सरकार द्वारा जब तक उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी की प्रधानता समाप्त नहीं होती, तब तक प्राथमिक स्तर पर भारतीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम बनने की संभावना नहीं। तब तक कुछ विशेष सुधार की संभावना भी नहीं हो सकती।

एक और महत्त्वपूर्ण कार्य होगा सी.बी.एस.ई. के केंद्रीय बोर्ड स्तर पर पूर्ण परिवर्तन कर सभी अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों को कम-से-कम वैकल्पिक माध्यम की सुविधा देना। विशेषकर समाज विज्ञान जैसा विषय अंग्रेजी में पढ़ाया

जाना बेतुका-सा है। इससे भारतीय भाषाओं में लेखन क्षमता का विकास होगा और देशी भाषाओं में लिखित सामग्री की माँग बढ़ेगी। संभव है, इस प्रकार की कारवाई को उच्च वर्गीय भारतीयों द्वारा पीछे की ओर (अधोगति की ओर) ले जानेवाली कारवाई बताया जाए। परंतु जैसाकि इस लेख में बताया गया है, यह पिछड़ेपन की सोच हमारे मन की सोच है। जबकि वास्तविकता यह है कि यह समाज के सभी वर्गों को आधुनिक आर्थिक क्षेत्रों के लिए अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराएगी। अभी कुछेक लोगों की तुलना में सभी भारतीय भाषाओं के माध्यम से संरचनात्मक क्षमता उभरकर सामने आएगी। यद्यपि भारत में जाति आधारित विषयों पर निरंतर ध्यान दिया जाता रहा है, इसकी तुलना में भाषाई पहुँच के संबंध में विशेष कुछ नहीं हुआ। भारत में आज की स्थिति में यह सामाजिक और आर्थिक वर्ग का अधिक निर्धारण करता है। यही बृहत् स्तर पर सामाजिक पहुँच और समृद्धि के लिए बड़ी बाधा है। जाति के प्रति मोह को पहुँच के लिए समस्या मानना औपनिवेशिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है। परंतु यही दृष्टिकोण अंग्रेजी आधारित वर्ग व्यवस्था, भाषाई बाधा व भेदभाव की समस्या को देख पाने में विफल है। आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में भाग लेने के लिए अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, बल्कि सरकारी नीतियों और निजी धारणाओं द्वारा थोपा जानेवाला अंग्रेजी माध्यम अधिकांश भारतीयों के लिए इस अर्थव्यवस्था में भाग लेने के लिए बाधा उत्पन्न करता है। भारतीय भाषाओं में मानव और समाज-विज्ञान का अध्ययन विशेष रूप से उच्च शिक्षा में नियमपूर्वक प्राधिकृत किया जाना चाहिए। भारत में कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में मानव और समाज विज्ञान विभाग औपनिवेशिक नीतियों का कचरा है। भारतीय समाज के प्रति इनका सकारात्मक योगदान, यदि है तो नगण्य है। इनसे नव औपनिवेशकों का एक नया वर्ग सामने आता है, जो स्थानीय संस्कृति और परंपरा के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना प्रदर्शित करता है। परिणामस्वरूप भारतीय विश्वविद्यालयों में इन विभागों की उपलब्धि नगण्य प्रायः ही है। सरकार को चाहिए कि इन संस्थाओं की सहायता का मूल्यांकन करे और कुछेक आइवरी टावर को ध्वस्त कर देना चाहिए, ताकि वास्तविक जगत् के सामाजिक विषयों पर इनके सकारात्मक परिणाम और सामाजिक प्रभाव का अध्ययन हो सके। इसके साथ ही इस प्रकार के अध्ययन को आगे बढ़ानेवालों, ऐसे व्यक्तियों को छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध होनी चाहिए, जो

भारतीय भाषाओं में भारतीय मूल के शोध-कार्य लिखें।

संवाद के एक उपकरण के रूप में सीखी भाषा को एक विदेशी भाषा, जो वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा के प्रमुख माध्यम की भूमिका हड़प लेती है, से पृथक् करके देखना श्रेयस्कर होगा। उपयुक्त भाषा नीति के द्वारा अंग्रेजी को प्रमुख भाषा के रूप में इसके प्रभाव को कम कर इसे द्वितीय भाषा के स्तर पर पढ़ाया जाना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेजी को द्वितीय अथवा तृतीय भाषा के तौर पर पढ़ाने को बढ़ावा देना चाहिए। अंग्रेजी भाषा के अनेक अध्यापकों को इससे नौकरी मिलेगी और उच्च वर्गीय व्यवस्था भी समाप्त होगी।

□

आत्महत्या को विवश करती अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था*

यह मान्यता भी बनाई गई है कि अंग्रेजी माध्यम ही गरीबों और दलितों के उत्थान का रास्ता है। इसे शेरनी के दूध की तरह भी बताया गया है। जहाँ न्युपा (NUEPA) के उपकुलपति प्रो. आर. गोविंदम और दिल्ली स्थित डॉ. भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. श्याम बी. मैनन अकसर अपना उदाहरण भी देते रहते हैं कि किस तरह से उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा क्रमशः तेलुगू और मलयालम माध्यम से लेकर धीरे-धीरे अंग्रेजी माध्यम से उच्च शिक्षा हेतु अपने आप को तैयार किया।

श्याम बी. मैनन की मानें तो उन्होंने पहले अपनी क्षेत्रीय भाषा मलयालम में ही पढ़ना-लिखना सीखा था। अंग्रेजी तो तीसरी कक्षा के बाद ही सीखनी प्रारंभ की और उच्च माध्यमिक कक्षा तक आते-आते अंग्रेजी साहित्य की क्लासिकल (श्रेष्ठ माने जाने वाली रचनाओं) का अध्ययन करने लगे थे। आर. गोविंदम भी अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं कि उन्होंने पहले अपनी प्राथमिक क्षेत्रीय भाषा पर पकड़ हासिल की, तत्पश्चात् उनके लिए अंग्रेजी सीखना सहज हो गया। पर ये दोनों ही शिक्षाविद् इस बात का जिक्र नहीं करते कि स्कूल के बाहर के वे कौन से मध्यवर्गी जैक (सहारे) थे, जिसकी वजह से वे आसानी से अंग्रेजी पर पकड़ हासिल करने में सफल हो सके, और परिणामस्वरूप वे यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) स्तर की कक्षाओं में बिना बाधा

*यह अश्विनी कुमार की पुस्तक 'दि इंग्लिश मीडियम सिस्टम दैट इज अंग्रेजी राज' पर आधारित

के अंग्रेजी के प्रयोग में सफल रहे। साथ ही वे इस बात का जिक्र नहीं करते हैं कि उनके साथ पढ़नेवाले उनके कितने साथी सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी न सीख पाने की वजह से उच्च शिक्षा से वंचित रह गए। हालाँकि हमारी केस स्टडी के दौरान ऐसे अनेकों केस आए, जिसमें लोग सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी न आने की वजह से यूनिवर्सिटी की चौखट से धकिया दिए गए।

हम इस अध्याय में उन केसों के अलावा कुछ अखबारों की सुर्खियों में छाने वाली घटनाओं का जिक्र करेंगे। कुछ ऐसे केस, जिसमें उच्च शिक्षा के मंदिरों में होनहार विद्यार्थियों ने सिर्फ अंग्रेजी माध्यम के दबाव में आत्महत्या कर ली। अंग्रेजी माध्यम का यह दबाव पढ़ाई से ज्यादा अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था का था। किसी भी व्यवस्था का अपने आप को बनाए रखने का अपना एक गुण होता है और औपनिवेशिक काल में स्थापित इस व्यवस्था में जैसे ही कोई ऐसा व्यक्ति दाखिल होता है, जो व्यवस्था के मूल्यों के अनुरूप न हो तो व्यवस्था उसे धकियाने लगती है। आइए, अखबार की सुर्खियों में छाए कुछ ऐसे केसों पर नजर डालते हैं कि किस प्रकार अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था ने अंग्रेजी मैया को प्रसन्न करने हेतु ग्रामीण, क्षेत्रीय एवं कस्बाई पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों की बलि दी। बलि की वेदी पर चढ़नेवालों में हर जाति-मजहब, क्षेत्र के निम्न एवं निम्न-मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि से संबंधित हैं।

आइए, अखबारों में छप चुकी कुछ घटनाओं पर नजर डालें—

केस 1—अनिल मीणा की मौत

दलित व आदिवासी विद्यार्थियों की मौत में भेदभाव की कहानी[1]

योग्यता महत्त्वपूर्ण है— छात्रों को डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक बनने के लिए किसी भी शैक्षिक संस्था में शामिल होने से पहले भीषण प्रवेश परीक्षाओं के माध्यम से जाना पड़ता है।

अनिल मीणा कृषकों के एक आदिवासी परिवार का लड़का है। उसने दिल्ली से राजस्थान के बाराँ जिले में अपने गाँव से 500 किमी. से अधिक की दूरी तय की। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स, AIIMS) देश के प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों में से एक में डॉक्टर बनने के लिए सबसे मुश्किल मेडिकल प्रवेश परीक्षाओं में योग्यता साबित की।

हालाँकि, इस प्रतिष्ठित संस्था में अपने प्रवास के दो साल के भीतर, 3 मार्च, 2012 को उसने खुद को फाँसी लगा ली। एम्स प्रशासन के अनुसार, वह

'उदास' था। कारण— अंग्रेजी भाषा में कौशल की कमी। संयुक्त कठोर शैक्षणिक वातावरण का सामना करने पर, उसकी अक्षमता 'मनोरोग' समस्याओं में विकसित हो गई। अनिल 22 साल का था।

3 मार्च, 2010 को उसी दिन, एम्स के बालमुकुंद भारती ने इसी तरह से आत्महत्या कर ली थी। वह भी एक दलित छात्र है, लेकिन यह संयोग तारीख के साथ समाप्त नहीं होता। वह एक तीसरे क्लास के कर्मचारी का बेटा था, गाँव कुंडेश्नर, टीकमगढ़ जिले, बुंदेलखंड (मध्य प्रदेश), देश के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक। बालमुकुंद भी नवोदय विद्यालय से एक स्कूल टॉपर था और अकादमिक उत्कृष्टता के कई प्रमाण-पत्र से अपनी योग्यता साबित करने के बाद अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में उसे दाखिला मिला।

कहा जा रहा है कि वह भी 'उदास' था और 'अकादमिक प्रदर्शन का सामना करने की अपनी असमर्थता' के कारणवश उसने अपने छात्रावास के कमरे में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। बालमुकुंद की उम्र 25 साल थी, और वह डॉक्टर बनने से केवल दो महीने दूर था।

एम्स एक अकेली संस्था नहीं है। लगभग सभी प्रमुख शैक्षिक संस्थान इसमें शामिल हैं, जिनकी एक लंबी सूची है— विभिन्न आईआईटी, भारतीय साइंस (आईआईएससी) बंगलौर के संस्थान, हैदराबाद के विश्वविद्यालय और कई अन्य, जहाँ अधिक प्रतिभाशाली दलित और आदिवासी छात्रों, स्कूल और कॉलेज में अव्वल रहनेवाले छात्रों ने अपनी आशाओं को छोड़ आत्महत्या करना चुना।

कहा जाता है कि इन छात्रों को 'कम योग्यता के साथ' आरक्षण के माध्यम से प्रवेश मिल गया है और इन प्रमुख शैक्षिक संस्थानों की शैक्षणिक उम्मीदों को पूर्ण करने में असमर्थ होने पर इन्होंने अपनी जान दे दी है। लेकिन इस 'योग्यता' के प्रदर्शन में ग्रामीण-शहरी विभाजन, सामाजिक पृष्ठभूमि, परिवार, स्कूल में शिक्षा का माध्यम जैसे विभिन्न अन्य कारण भी एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

खुला घाव[2]

राजेंद्र और अनिल के संकट से सब अच्छी तरह परिचित थे। दोनों सरकारी स्कूलों से आए थे, जहाँ हिंदी में सिखाया जाता था। एम्स में कक्षाएँ केवल अंग्रेजी में थीं, और वे मुश्किल से ही व्याख्यान समझ पाते थे। 'यह एक

अलग दुनिया है,' राजेंद्र मुझे बताता था। 'हम हिंदी में अव्वल रहनेवाले छात्र थे, अब हम विफलताएँ झेल रहे हैं।' अंग्रेजी के साथ संघर्ष कर एम्स छात्रों को एक-दूसरे की सहायता के साथ पाठ्य-पुस्तकों को समझते और शब्दकोश साथ रखकर पढ़ते हैं। कक्षा में अंग्रेज माध्यम में व्याख्यान समझ न पाते तो कक्षा में जाने की जगह, इसी तरह की पृष्ठभूमि से पढ़े छात्रों से सहायता प्राप्त करके पढ़ते हैं। अनिल ने अपनी परीक्षा के लिए तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम सामग्री, वाक्य दर वाक्य, हिंदी माध्यम में अपने तरीके से अनुवाद कर, अपने छात्रावास के कमरे में ही तैयारी की। अपनी कक्षा में उसको उपस्थिति 50 प्रतिशत से नीचे थी और परीक्षण से पहले, जून 2011 में अनिल को बताया गया कि उसे परीक्षा में बैठने के लिए अनुमति नहीं दी जाएगी। यह एक दुखद आश्चर्य था। नियम नया नहीं था, लेकिन पहले शायद ही कभी लागू किया गया था। अगस्त में वह अनुपूरक परीक्षाओं में दिखाई दिया, लेकिन अपने सभी तीन विषयों में आश्चर्यजनक रूप से असफल रहा। तब से वह अपने 'पत्र फिर से मूल्यांकन किए जाएँ' का अनुरोध करने के लिए वरिष्ठ संकाय सदस्यों के साथ पूरा करने के लिए कोशिश कर रहा था; कोई भी उसकी सुनने के लिए तैयार नहीं लग रहा था।

इस रोग का एक वास्तविक घटना का स्थान संस्थान-विशिष्ट नहीं है। और न ही, जैसे की मान्यता है, यह सिर्फ कोटा प्रणाली के कारण है और इन स्नातकों में योग्यता का अभाव है। अभाव है तो अंग्रेजी भाषा पर अच्छी पकड़ का। मीना ने अपनी स्कूली शिक्षा हिंदी माध्यम में की थी और अंग्रेजी में व्याख्यान को समझने के लिए संघर्ष किया। स्कूल में क्षेत्रीय भाषाओं में सिखाया गया है, भारत भर में कई छात्र मीना की समस्या के साथ ताल्लुक रखते होंगे।

वे उच्च शिक्षा में प्रवेश करते हैं तो ऐसे छात्र अकसर इस विदेशी भाषा के साथ एक अजीब संघर्ष में जुट जाते हैं। इसके अलावा, वे अंग्रेजी के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों से आए अपने साथी छात्रों और शिक्षकों के बीच होते हैं। उनकी मुसीबतों को बढ़ाने में शैक्षिक वातावरण भी एक कारक है। अंग्रेजी में वे अच्छी तरह से बात नहीं कर पाते हैं, जिससे उनको नीचा देखने के लिए इस देश के मध्यम वर्ग के बीच एक व्यापक प्रवृत्ति है; जो छात्र अंग्रेजी में धाराप्रवाह नहीं बोल पाते हैं, उसे आम तौर पर एक 'अक्षम' छात्र के रूप में देखा जाता है। अंग्रेजी माध्यम के संस्थान केवल अंग्रेजी में बातचीत करने के

लिए अपने छात्रों को प्रोत्साहित करते हैं, और मातृभाषा के उपयोग को हतोत्साहित किया जाता है। इस पूर्वग्रह व्यावसायिक क्षेत्र में भी आरोपित है। नतीजतन, यह उच्च शिक्षा और व्यावसायिक क्षेत्र में स्थानीय भाषा-माध्यम स्कूलों के छात्रों को काफी मुश्किलें आती हैं।

सवाल यह है कि क्या अनिल मीणा की जगह कोई और ग्रामीण कस्बाई गैर-अंग्रेजी माध्यम पृष्ठभूमि का तथाकथित सवर्ण माने जानेवाली जाति का ही विद्यार्थी होता, तो क्या एम्स की एलिट-अंग्रेजी माध्यम व्यवस्था उसके प्रति सहानूभूति रखती और सिर्फ एम्स के शिक्षण-अधिगम के लिए अपनाई गई अंग्रेजी भाषा को त्यागकर क्षेत्रीय बोलियों में एम्स में शिक्षण प्रारंभ कर देता?

या कोई अनुसूचित जाति-जनजाति के ही शहरी उच्च-मध्यम वर्गीय अंग्रेजी माध्यम सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी को भी अंग्रेजी माध्यम कक्षाओं में उसी तरह दिक्कत आती, जिस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रीय पृष्ठभूमि का होने की वजह से अनिल मीणा को आई। अंग्रेजी माध्यम पृष्ठभूमि के इस अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थी को भी क्लास बंक कर अंग्रेजी के पाठ्यक्रम को हिंदी में समझने के लिए किसी दूसरे सहारे की जरूरत पड़ती?

आज की समस्या क्या है, सवाल केवल परंपरागत जातियों का नहीं, बल्कि अंग्रेजी-माध्यम की एक नई जाति बन गई है, जो कि गैर-अंग्रेजी भाषीय लोगों पर हावी है।

२. कम अंग्रेजी कौशल के कारण इंजीनियरिंग छात्र की जीवन समाप्ति[3]

अपने कम अंग्रेजी कौशल से परेशान एक 19 वर्षीय इंजीनियरिंग के छात्र ने बुधवार को एक ट्रेन के सामने कूदकर आत्महत्या कर ली। सूत्रों का कहना है कि प्रशांत अलगप्पा नगर के मलाईसामी का बेटा है और शिवकाशी के निकट स्थित एक निजी कॉलेज के प्रथम वर्ष में इंजीनियरिंग छात्र था। प्रशांत ने 1100 के स्कोर के साथ टीवीएस सुंदरम हायर सेकेंडरी स्कूल से अपनी प्लस टू तमिल माध्यम से पूरी की। वह कंप्यूटर इंजीनियरिंग कोर्स में अपने माता-पिता के दबाव के कारण शामिल हो गया।

उसने तमिल माध्यम से अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त की। उन्होंने कहा कि उसे कॉलेज में अंग्रेजी में सिखाए जाने के कारण परेशानी का सामना करना पड़ा,

क्योंकि कम अंग्रेजी ज्ञान के कारण वह अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सका। अन्य छात्रों ने भी उसे अलग-थलग करना शुरू कर दिया था और इस वजह से वह उदास रहता था, स्कूल में उसके साथ अध्ययन करते दोस्तों में से एक ने कहा।

शव बरामद किया तो पुलिस को एक नोट मिला, जिसमें उल्लेख किया है कि अंग्रेजी माध्यम इंजीनियरिंग पढ़ाई के साथ सामना नहीं कर पाना आत्महत्या का कारण था। उसने यह भी लिखा, 'मैं माफी चाहता हूँ अम्मा,' उस चरम निर्णय के लिए अपनी माँ से माफी माँगी थी। पुलिस सूत्रों ने कहा कि पिछले तीन दिनों में यहाँ आत्महत्या करनेवाला छात्र इंजीनियरिंग कॉलेज का तीसरा छात्र है।

सवाल उठता है कि गैर-अनुसूचित जाति पृष्ठभूमि के तमिल माध्यम का इस विद्यार्थी आत्महत्या करने के लिए विवश क्यों हो गया?

इस क्षेत्र के नेताओं ने ही तो नारा दिया था, 'हिंदी नहीं! अंग्रेजी चलेगी, हिंदी नहीं, अंग्रेजी चलेगी!' तो फिर उसी प्रदेश में लोग आज अंग्रेजी की वजह से आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? काश, उन्होंने अंग्रेजी की जगह तमिल-तेलुगू के पक्ष में आवाज उठाई होती तो ऐसा नहीं होता।

3. एस ध्रीया लक्ष्मी[4]

अन्ना विश्वविद्यालय में प्रथम वर्ष की छात्रा द्वारा आत्महत्या

अन्ना विश्वविद्यालय के एक 19 वर्षीय छात्र ने मंगलवार सुबह छात्रावास के अंदर फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। पुलिस ने कहा कि वह अपने कॉलेज की शिक्षा से जूझने में सक्षम नहीं थी और यह चरम कदम उठाने का फैसला करते हुए उसने एक सुसाइड नोट छोड़ा था।

एस ध्रीया लक्ष्मी विल्लुपुरम जिले में के.वी. पलयम की निवासी थी और गिंडी में सिविल इंजीनियरिंग की प्रथम वर्ष की छात्रा थी। वह एक कमरे में पाँच छात्रों के साथ रह रही थी।

लड़की के पिता शक्तिवेल एक किसान हैं। उसने फोन पर 'द हिंदू' को बताया कि ध्रीया लक्ष्मी उसकी सबसे बड़ी बेटी थी और उसने बारहवीं कक्षा में 92 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। उन्होंने बताया कि मैंने एक बैंक से ऋण लिया और बहुत संघर्ष के बाद कॉलेज में उसे डाला।'

उसके सहपाठियों ने कहा कि उसने सुबह कक्षा में भाग लिया था।

उसके दोस्तों में से एक ने कहा, 'लेकिन उसने कहा था कि उसे अंग्रेजी के कारण यह पढ़ाई कठिन और दुर्गम लग रही थी'।

श्रीया लक्ष्मी ने पहले सेमेस्टर की परीक्षा में 7.85CGPA प्राप्त किए और उसकी 93 फीसदी से अधिक की उपस्थिति थी। लेकिन उसने कहा कि वह एक तमिल माध्यम स्कूल से आई थी, इसलिए उसे आंतरिक मूल्यांकन परीक्षा पास करना कठिन लगा। उनमें से एक ने कहा, 'दो आंतरिक मूल्यांकन राउंड में उसने एक नहीं दिया और दूसरे में बुरा परिणाम आया। यह उसे बहुत परेशान कर रहा था, उसे लगता था कि साल खो दिया'।

सवाल उठता है कि 92 प्रतिशत अंकों के साथ पास होने वाली एस. धारिया लक्ष्मी कॉलेज में आते ही पिछड़ने क्यों लगी? क्या तमिल पृष्ठभूमि का होना ही इस किसान की बेटी का कसूर तो नहीं?

4. दलित छात्रों के लिए, अंग्रेजी से तमिल माध्यम की भयावह छलाँग[5]

अपनी स्कूली शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत अधिकतर अंग्रेजी सीखने की आवश्यकता अनुभव करते हैं—

त्रिचि स्थित सैंट जोसेफ कॉलेज में शनिवार को मौखिक अंग्रेजी की एक कक्षा के दौरान तमिल माध्यम के विद्यालय की एक छात्रा चंद्रा, जो कि 12वीं कक्षा की परीक्षा के पश्चात् परिणाम की प्रतीक्षा में है, कहती है कि जब तक मैं मदुरै में इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षा में नहीं बैठी थी तब तक मैं अंग्रेजी में बोलने वालों को तिरस्कार की दृष्टि से देखती थी

(परीक्षा में) सभी निर्देश अंग्रेजी भाषा में ही थे। मेरे चारों ओर बैठे विद्यार्थीगण अंग्रेजी भाषा में ही प्रश्न पूछ रहे थे। यद्यपि मेरे मन में भी कुछ शंकाएँ थीं, परंतु मैं उन्हें पूछने में घबराहट अनुभव कर रही थी। अपने विद्यालय में सर्वप्रमुख स्थान पर रहनेवाली छात्रा चंद्रा अंग्रेजी माध्यम की बाधा के कारण परीक्षा अपनी तैयारी के अनुरूप नहीं दे पाई थी।

स्कूल से कॉलेज का पारगमन अपने आप में एक ऊँची छलाँग लगाने जैसा है। परंतु एक निर्धन और दलित परिवार की चंद्रा अपने परिवार से कॉलेज जानेवाली प्रथम लड़की है। उसके लिए यह परिवर्तन एक भयावह दु:स्वप्न सा है। कुंबको नाम से एक ओर छात्र जोन का कहना है कि अधिकांश छात्र स्कूली

शिक्षा समाप्त करने के बाद ही अंग्रेजी सीखने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। स्कूल में अंग्रेजी मात्र एक विषय था। परीक्षा के पश्चात् सभी कॉलेज के बारे में ही बात करते थे। मेरे एक संबंधी ने जब मुझसे यह पूछा कि क्या मैं जानता हूँ कि कॉलेज में सभी विषय अंग्रेजी में पढ़ाए जाएँगे तो मैं भयभीत हो गया। त्रिचि में सैंट जोसेफ कॉलेज में मौखिक अंग्रेजी से संबंधित एक आवासीय प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित विभिन्न जिलों के विद्यार्थियों ने अपनी कक्षा में परस्पर विभिन्न विषयों को एक ऐसी अजनबी भाषा अर्थात् अंग्रेजी में पढ़ाने के संबंध में अपनी चिंताएँ व्यक्त कीं, क्योंकि वे उस भाषा को नहीं समझते थे। कुछ विद्यार्थियों ने इस बात को भी स्वीकार किया कि वे तब तक अंग्रेजी की उस संज्ञा से परिचित नहीं थे।

सालेम से एक अन्य विद्यार्थी दीपा ने कहा कि स्कूलों में अंग्रेजी मात्र एक विषय होने के कारण वे इतने वर्षों तक किस-किस तरह से उत्तीर्ण कर पाए। मुसुरी से एक और विद्यार्थी तिलक यह बताता है कि इसके लिए उसका यह सहज उपाय रहता है कि 'मैं वाक्य के क्रमानुसार सभी शब्दों को रट लेता हूँ, भले ही उनमें से आधे से अधिक शब्दों के अर्थों को मैं समझ नहीं पाता, परंतु इस पद्धति से एक समस्या यह है कि यदि मैं एक शब्द भी बीच में भूल जाऊँ तो पूरा वाक्य गड़बड़ा जाता है।'

विद्यार्थी प्राय: मेडिसिन, इंजीनियरिंग, कॉमर्स, बायो-टेक्नोलॉजी और सिविल सर्विसेज का कॅरियर चुनते हैं। पेरंबलूर के एक सरकारी स्कूल की छात्रा सुजीता का कहना है कि स्कूल में सभी विषय हम तमिल में पढ़ते हैं तो फिर कॉलेज में वही सब एक दूसरी भाषा में क्यों पढ़ाया जाता है?

प्रश्न उठता है कि जितना जोर दलित ग्रामीण पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों को अंग्रेजी सिखाने में लगाया जा रहा है, उसका आधा जोर भी यदि दलित भाषाओं और काम को शिक्षा की धुरी में लाने पर किया गया होता तो दलित वर्ण ही नहीं तमाम जातियों के लोग शिक्षा की धुरी पर होते। यह व्यवस्था विद्यार्थियों को अंग्रेजी माध्यम में ढालने के बजाय खुद को उनकी जनभाषाओं में क्यों नहीं ढालती? विडंबना यह है कि छोटे-छोटे देश भी अपनी-अपनी भाषाओं में सब प्रकार की उच्च शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, लेकिन भारत अपनी अति समृद्ध भाषाओं को बढ़ावा न देकर अपने जन-समाज को कुचल रहा है।

6. बी फार्मा के छात्र का आत्महत्या का प्रयास[6]

19 वर्षीय बी फार्मा की एक छात्रा अपने कॉलेज की इमारत की तीसरी मंजिल से कूद गई। कॉलेज की इमारत से कूदने के बाद, इंजीनियरिंग और प्रबंधन सक्सेना संस्थान की संबुल इशाक नामक छात्रा गंभीर रूप से घायल हो गई थी, पुलिस ने बताया।

उसके पिता अबू इशाक ने पुलिस में शिकायत दर्ज कराई और इसकी जाँच चल रही है; पर उसके पिता के अनुसार, संबुल की कॉलेज में रैगिंग की जा रही थी। उसके साथियों ने कहा कि उसे कॉलेज में शिक्षण के अंग्रेजी माध्यम के कारण समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। इसलिए वह अवसाद में थी, क्योंकि उसका अकसर उपहास किया जाता था।

जाहिर है कि हर मजहब, हर जाति के विद्यार्थी अंग्रेजी-माध्यम व्यवस्था के कारण पिस रहे हैं, लेकिन इस भेदभाव को अंग्रेजी की अनिवार्यता के नाम पर बढ़ाते चले जा रहे हैं।

□

भाग-2

एक नई सोच की आवश्यकता

केवल सांस्कृतिक नहीं, आर्थिक हित भी

वर्तमान भाषा नीति के पथ का यदि हमने इसी प्रकार अंधानुकरण जारी रखा तो आगामी एक सौ वर्षों में धीरे-धीरे लगभग सभी भारतीय भाषाएँ लुप्त हो जाएँगी। भारत से कुछेक सौ वर्ष पूर्व उपनिवेश बना दक्षिणी अमेरिका आज वहाँ के लोगों की सभी स्थानीय भाषाएँ और मौलिकता व्यावहारिक रूप से खो चुका है। उसे अपना उपनिवेश बनानेवाले स्पेन और पुर्तगाल की भाषाएँ ही आज उनकी मातृ भाषाएँ बन चुकी हैं।

सरकार भले ही भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्त्व के दृष्टिगत उनके संरक्षण की बात करती हो, परंतु आर्थिक, वैधानिक और तकनीकी आदि क्षेत्रों में अंग्रेजी का प्रभुत्व निरंतर बना हुआ है। यह हमारी मूर्खता है तथा दूरदर्शिता का अभाव ही है। अवशेष व मृत वस्तुएँ तो केवल संग्रहालयों में ही संरक्षित रखने के लिए होती हैं। भाषाओं के प्रोत्साहन और उनकी उन्नति के लिए उन्हें आर्थिकता के साथ-साथ अन्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय ज्ञानार्जन से जोड़ा जाना आवश्यक होता है।

यह औपनिवेशिक नीति के अंधानुकरण का ही परिणाम है कि आज अंग्रेजी लोगों के मन-मस्तिष्क पर छाई हुई है। मैकाले ने घृणित तथा षड्यंत्रकारी क्षणों में भारतीय भाषाओं को विज्ञान, तकनीकी क्षेत्र अथवा शिल्प विज्ञान के लिए अनुपयुक्त करार देते हुए अपनी कुत्सित चाल के तहत कहा था कि 'यह अधिक-से-अधिक केवल साहित्य की भाषाएँ बन सकती हैं।'

"परंतु जब हम कल्पना की अपेक्षा यथार्थ व सैद्धांतिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो यूरोपियनों की श्रेष्ठता बहुत आगे है।" सरकार की वर्तमान 'इ-भाषा परियोजना' मैकाले के उस दुराग्रह पर आधारित है, जिसमें भारतीय

केवल सांस्कृतिक नहीं, आर्थिक हित भी

वर्तमान भाषा नीति के पथ का यदि हमने इसी प्रकार अंधानुकरण जारी रखा तो आगामी एक सौ वर्षों में धीरे-धीरे लगभग सभी भारतीय भाषाएँ लुप्त हो जाएँगी। भारत से कुछेक सौ वर्ष पूर्व उपनिवेश बना दक्षिणी अमेरिका आज वहाँ के लोगों की सभी स्थानीय भाषाएँ और मौलिकता व्यावहारिक रूप से खो चुका है। उसे अपना उपनिवेश बनानेवाले स्पेन और पुर्तगाल की भाषाएँ ही आज उनकी मातृ भाषाएँ बन चुकी हैं।

सरकार भले ही भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्त्व के दृष्टिगत उनके संरक्षण की बात करती हो, परंतु आर्थिक, वैधानिक और तकनीकी आदि क्षेत्रों में अंग्रेजी का प्रभुत्व निरंतर बना हुआ है। यह हमारी मूर्खता है तथा दूरदर्शिता का अभाव ही है। अवशेष व मृत वस्तुएँ तो केवल संग्रहालयों में ही संरक्षित रखने के लिए होती हैं। भाषाओं के प्रोत्साहन और उनकी उन्नति के लिए उन्हें आर्थिकता के साथ-साथ अन्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय ज्ञानार्जन से जोड़ा जाना आवश्यक होता है।

यह औपनिवेशिक नीति के अंधानुकरण का ही परिणाम है कि आज अंग्रेजी लोगों के मन-मस्तिष्क पर छाई हुई है। मैकाले ने घृणित तथा षड्यंत्रकारी क्षणों में भारतीय भाषाओं को विज्ञान, तकनीकी क्षेत्र अथवा शिल्प विज्ञान के लिए अनुपयुक्त करार देते हुए अपनी कुत्सित चाल के तहत कहा था कि 'यह अधिक-से-अधिक केवल साहित्य की भाषाएँ बन सकती हैं।'

''परंतु जब हम कल्पना की अपेक्षा यथार्थ व सैद्धांतिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो यूरोपियनों की श्रेष्ठता बहुत आगे है।'' सरकार की वर्तमान 'इ-भाषा परियोजना' मैकाले के उस दुराग्रह पर आधारित है, जिसमें भारतीय

भाषाओं को पुरातन साहित्य तक सीमित रखने की बात कही गई है। इसके विपरीत इजराइल द्वारा अपनी भाषा हिब्रू के पुनरुद्धार हेतु एक स्पष्ट नीति के आलोक में तुलनात्मक दृष्टि से देखना उपयुक्त होगा। उन्नीसवीं शताब्दी तक हिब्रू साहित्य की भाषा भी नहीं थी। इजराइल में इसके पुनरुद्धार हेतु हिब्रू माध्यम के इंजीनियरिंग कॉलेज टेक्नीयन की नीतिगत शुरुआत इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। भारतीय भाषाओं को एक दूरगामी दुर्नीति के द्वारा क्षति पहुँचाई गई, जिसका प्रारंभ मैकाले ने किया था और दुर्भाग्यवश, स्वतंत्र भारत की परवर्ती सरकारों ने उसी नीति का अनुसरण जारी रखा। परिवर्तन कष्टदायक अवश्य होता है, परंतु हमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी पड़नेवाले इसके कुप्रभाव को समझना होगा। इस स्थिति को पलटने के लिए नीति में स्पष्ट बदलाव लाना होगा। 'मैकाले नीति' को अलविदा कहना होगा।

प्राच्य शिक्षा प्रणाली के प्रशंसक यह तर्क देते हैं कि यदि हम इसे वैध मान लेते हैं तो यह पूर्ण परिवर्तन के लिए निर्णायक सिद्ध होगा। वे मानते हैं कि वर्तमान पद्धति के प्रति जनविश्वास गिरवी है। स्पष्ट दूरगामी नीतियों की पहल के साथ हमारा वर्तमान प्रणाली से ऊपर उठना आवश्यक हो जाता है।

सॉफ्ट पॉवर परियोजना

विश्व की प्रमुख सभ्यताओं, एंग्लो-सेक्सन, चीनी और इसलामी, यहाँ तक कि फ्रेंच तथा स्पेनी भी सॉफ्ट पॉवर के प्रक्षेपण में भाषा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

विश्व भर में मंदारिन के प्रसार हेतु चीन ने एक आक्रामक पहल की है। चीनी सरकार चीन में चीनी भाषा पढ़नेवाले विदेशी छात्रों को पूर्ण व आंशिक छात्रवृत्तियाँ देती है। छात्रवृत्ति में चीनी भाषा के निशुल्क अध्ययन के साथ-साथ यात्रा, आवास और भोजन भत्ता भी सम्मिलित है।

इसलामी सभ्यता का केंद्र साऊदी अरब विश्व भर में मध्य-पूर्वी और अरबी अध्ययन हेतु निवेश करता है। पाकिस्तान में अरबी को द्वितीय भाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से प्रभावी प्रयास हो रहे हैं (कुछ लोग तो पाकिस्तान को 'अल बाकिस्तान' कहते हैं, क्योंकि अरबी भाषा में 'प' ध्वनि नहीं है।) इसी प्रकार फ्रांस विश्व भर में 'एलायंस फ्रैंकेस' जैसी फ्रांसीसी संस्थाओं के माध्यम से अपनी भाषा का प्रसार करता है।

अमेरिका सॉफ्ट पावर के प्रसार में अपनी संस्थाओं के माध्यम से अंग्रेजी भाषा के वैज्ञानिक साहित्य में भारी निवेश करता है। ब्रिटेन भी समूचे विश्व में अंग्रेजी लेखकों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से साहित्यिक पुरस्कारों के आयोजन करता है। फिर वही व्यक्ति भारत में हीरो अथवा महानायक के रूप में प्रदर्शित किए जाते हैं।

भारत में विडंबना यह है कि यहाँ सरकारी समर्थन के अभाव में कुछेक निजी प्रयास ही हुए हैं, जिन्होंने भारतीय भाषाओं को लोकप्रिय बनाया है। बॉलीवुड ने हिंदी को लोकप्रियता दी है, भले ही यह मुख्यता हिंगलिश के रूप में एक मिश्रित भाषा का ही रूप रहा है। योग-क्रांति ने भी संस्कृत और देवनागरी के प्रति एक अभिरुचि जगाई है। परंतु सॉफ्ट पॉवर के प्रभाव को भुनाकर भारतवर्ष भारतीय भाषाओं को आगे बढ़ाने में भी विफल हुआ है। वस्तुतः हमारे राष्ट्र में अस्पष्ट भाषा नीति ही इसका मुख्य कारण है और इस प्रकार भारत द्रुत गति के साथ एंग्लो-सेक्सन सभ्यता का ही एक उपगृह बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। जब तक भारत में भारतीय भाषाओं को आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर सामने नहीं लाया जाता, तब तक वर्तमान स्थिति के प्रवाह को पलटा नहीं जा सकेगा। हमने मैकालेकरण के अभियान के तौर पर अंग्रेजी को भारत की तथाकथित उच्च संस्कृति के रूप में स्थापित कर रखा है। भारतीय उच्च संस्कृति की पूर्व भाषा संस्कृत की तरह अंग्रेजी का अन्य भारतीय भाषाओं की संस्कृति व सभ्यता के साथ तालमेल नहीं बैठता। उच्च संस्कृति के रूप में अंग्रेजी को भारत सरकार द्वारा शैक्षणिक एवं संस्थागत समर्थन की निरंतरता हमारी राष्ट्रीय सभ्यता के लिए एक दु:खद आघात है। इस स्थिति को सुधार पाने के अवसर उत्तरोतर हमारे हाथों से खिसकते जा रहे हैं।

भारत में अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की प्रवीणता में गिरावट

भारत में विद्यालयों का प्रसार अनियोजित और अविवेचित नीति के तहत हो रहा है। इस स्थिति को यदि सुधारा नहीं गया तो भविष्य में इसके दु:खद परिणाम देखने को मिल सकते हैं। इस दृष्टि से कुछेक मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं—

1. यद्यपि अंग्रेजी प्रशिक्षित भारतीयों की संख्या बढ़ रही है, परंतु सर्वेक्षणों में पाया गया है कि विश्व भर में जन्म से अंग्रेजी न बोलनेवालों की

अंग्रेजी प्रवीणता सूचकांक तालिका में भारत का स्थान तीव्रता से नीचे की ओर सरक रहा है।

2. अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी अपनी कक्षाओं के बाहर अंग्रेजी वातावरण के अभाव में अपने आप को धाराप्रवाह रूप में न तो अंग्रेजी और न ही अपनी स्थानीय मातृभाषा में अभिव्यक्त कर पाते हैं।
3. गैर-अंग्रेजी भाषी घरों के बच्चों को ऐसे विद्यालयी वातावरण में डालना, जहाँ शिक्षा का माध्यम मुख्य रूप से अंग्रेजी हो, उनके मन-मस्तिष्क, आत्म- विश्वास और सृजनात्मक क्षमता पर दु:खद प्रभाव डालता है।
4. रिपोर्टों से पता चलता है कि देशी भाषा वाले छात्र, जो अंग्रेजी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ते हैं, अपने शैक्षणिक वातावरण में सहजता के कारण विषय-वस्तु को अधिक अच्छी तरह ग्रहण कर लेते हैं। इससे उनका स्वाभाविक आत्मविश्वास और स्वत: कार्य करने की मन:स्थिति पुष्ट होती है।

विश्व जानना चाहता है कि भारत इंग्लिश या हिंगलिश में से क्या चुनेगा?

स्वाधीन भारत में भारतीय भाषाओं के लिए स्पष्ट नीति के अभाव में अंग्रेजी आज से लगभग दो सौ वर्षों तक हम पर जिस प्रकार थोपी गई थी, ठीक वैसे ही आज भी उच्च शिक्षा, आर्थिक सुअवसरों (नौकरियों) और प्रशासन की भाषा बनी हुई है। भारत के उच्च शिक्षित वर्ग में वही लोग आते हैं, जिनके परिवारों ने पिछली कुछेक पीढ़ियों से अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई की है और जहाँ उनके अभिभावकों व मित्रों द्वारा अंग्रेजी बोली जाती है। परंतु अधिकांश भारतीय बच्चे उस वर्ग से होते हैं, जहाँ प्राथमिक शिक्षा काल में अंग्रेजी उसकी कक्षा के बाहर या घर में नहीं बोली जाती। इसी प्रकार भारत में कॉन्वेंट स्कूलों जैसे अंग्रेजी भाषा के उत्साही ध्वजवाहकों की रिपोर्ट भी यही विलाप करती है कि कुछेक टूटे-फूटे वाक्य, जो कि बच्चे यंत्रवत् रट-रटकर सीख लेते हैं, के अतिरिक्त बच्चों में अंग्रेजी स्वाभाविक रूप से दर्ज नहीं होती। आश्चर्य होता है कि इस पर भी वे व्यर्थ में आशा करते रहते हैं कि कुछेक पीढ़ियों के बाद अंग्रेजी कौशल उनमें अवतरित हो जाएगा। सन् 2012 की बी.बी.सी. की एक

रिपोर्ट इस प्रकार है—

मैं जब विद्यालय में यह देखने को पहुँचा कि क्या उस बच्ची को धन की एवज में तदनुरूप मूल्य शिक्षा प्राप्त हो रही है, तो मैंने पाया कि अधिकांश विद्यार्थियों को शिक्षा के माध्यम की बहुत कम समझ थी।

प्रात:कालीन सभा में वे तोता-रटंत भाषा की तर्ज पर विद्यालय की प्रार्थना गुनगुना रहे थे, जिसे अंग्रेजी मानना कठिन सा लगा। प्रिंसिपल, जिन्हें आदरपूर्वक 'फादर गुडविल' के नाम से पुकारा जाता है, समय के ऊपर ही यह सबकुछ छोड़ देनेवाली प्रकृति के लगे। उन्होंने कहा, 'यहाँ अधिकांश बच्चे ऐसे परिवारों से हैं, जहाँ अंग्रेजी नहीं बोली जाती, परंतु आगामी 50 वर्षों में अंग्रेजी इनमें स्वत: अवतरित हो जाएगी।'

उपर्युक्त अनुभव से मुझे लगा कि इन बच्चों के लिए पढ़ाई अपनी मातृभाषाओं और अंग्रेजी सिर्फ द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ना श्रेयस्कर होगा

क्या अंग्रेजी माध्यम से परिणाम बेहतर होते हैं?

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के अधिकार के अधिनियम के अंतर्गत विद्यालयों में भरती में वृद्धि, नौकरी, आर्थिक सुअवसरों और सांस्कृतिक प्रक्रिया से अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा की प्राथमिकता उभरकर सामने आई है, परंतु पड़ोस के सरकारी स्कूल में यह सुविधा उपलब्ध न होने से निर्धन परिवार अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यमवाले प्राइवेट स्कूलों में भेजते हैं। इस पर उनकी आय का एक तिहाई से अधिक खर्च हो जाता है। भारतीय भाषाओं में व्यावसायिक एवं उच्च शिक्षा का अभाव ही उन्हें मुख्य रूप से अंग्रेजी माध्यम की ओर धकेलता है। अंग्रेजी के प्रति पक्षपात का ही प्रभाव है कि मूर्खतावश इसे जारी रखने की बात की जाती है और इसी कारण आजकल सभी अंग्रेजी सीखना चाहते हैं।

यद्यपि अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के प्रति आग्रह से परीक्षार्थियों में प्रबलता दिखाई देती है, तथापि परीक्षणों और सर्वेक्षणों में अंग्रेजी प्रशिक्षित भारतीय विद्यार्थियों की औसतन भाषाई प्रवीणता का स्तर काफी नीचे पाया गया है। अध्ययन के अनुसार विश्व में (उन देशों में, जहाँ अंग्रेजी स्थानीय भाषा नहीं है) वर्ष 2012 से 2014 के मध्य भारतवर्ष अंग्रेजी प्रवीणता सूचकांक की तालिका में 14 से 21वें स्थान पर जा खिसका है।

अत्यधिक प्रवीणता	अधिक प्रवीणता	सामान्य प्रवीणता	न्यून प्रवीणता	अतिन्यून प्रवीणता
1. स्वीडन	8. पोलैंड	18. स्लोवाकिया	29. उरुग्वे	44. चिल्ली
2. नॉर्वे	9. हंगरी	19. अर्जेंटीना	30. श्रीलंका	45. मोरोक्को
3. नीदरलैंड	10. स्लोवेनिया	20. चैक रिपब्लिक	31. रूस	46. कोलंबिया
4. इस्टोनिया	11. मलेशिया	21. भारत	32. इटली	47. कुवैत
5. डेनमार्क	12. सिंगापुर	22. हांगकांग	33. ताईवान	48. इक्वेडर
6. ऑस्ट्रिया	13. बेल्जियम	23. स्पेन	34. चीन	49. वेनेजुएला
7. फिनलैंड	14. जर्मनी	24. दक्षिणी कोरिया	35. फ्रांस	50. जोर्डन
	15. लाटविया	25. इंडोनेशिया	36. यू.ए.ई.	51. कतर
	16. स्विट्जरलैंड	26. जापान	37. कोस्टारिका	52. गुआटेमाला
	17. पुर्तगाल	27. उक्रेन	38. ब्राजील	53. साल्वाडोर
		28. वियतनाम	39. पेरू	54. लीबिया
			40. मेक्सिको	55. थाईलैंड
			41. तुर्की	56. पनामा
			42. ईरान	57. कजाकिस्तान
			43. मिस्र	58. अल्जीरिया
				59. संऊदी अरब
				60. इराक

इस प्रकार हम भारत को न केवल स्पष्ट रूप से मध्यम वर्ग में पाते हैं, परंतु यहाँ इसके स्तर को तेजी के साथ नीचे की ओर सरकते भी देखते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बी.बी.सी. की इसी रिपोर्ट से हमें पता चलता है कि—

मराठी माध्यम का एक विद्यालय, जहाँ स्वयंसेवक बोलचाल की अंग्रेजी की कक्षाएँ चलाते हैं, के आयोजक ने मुझे बताया कि उन्हें अधिक महत्त्वाकांक्षी अंग्रेजी माध्यमवाले विद्यार्थियों की तुलना में यहाँ बेहतर परिणाम मिल रहे हैं।

अतः जब विद्यार्थी स्थानीय देशी भाषा से परिभाषित वातावरण में अध्ययन कर रहे थे तो उन्होंने न केवल स्वभाषा बल्कि द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी में भी बेहतर भाषाई कुशलता अर्जित की, जबकि अंग्रेजी को प्रमुख माध्यम के रूप में लेकर पढ़नेवाले छात्रों को सबसे पहले उसे सीखने के लिए ही संघर्ष करना पड़ा। उसी लेख में ही आगे यह भी बोध कराया गया है—

वे कहते हैं, अंग्रेजी सीखनेवाली प्रथम पीढ़ी का आत्म-बोध कुछ विखंडित

मानसिकता वाला होता है। वे सोचते और विचारते तो अपनी मातृ भाषा में हैं, परंतु उन्हें अपने व्यावसायिक क्षेत्र में अंग्रेजी का प्रयोग करना पड़ता है

यही विखंडित भाषाई मानसिकता सैकड़ों नए भाषा शिक्षण केंद्रों हेतु अपार व्यावसायिक अवसर उपलब्ध कराती है, जहाँ युवा सफेदपोश कर्मचारी अंग्रेजी सीखते हैं और सांध्यकालीन ऐसी कक्षाओं के लिए लगभग आधा वेतन खर्च कर देते हैं। अंग्रेजी के अधकचरे ज्ञानवाले अध्यापकों के ऐसे केंद्रों से निकलनेवाले लोगों के अंग्रेजी-बोध का आभास हमें भारतीय कॉल-सेंटरों से बातचीत करने पर हो जाता है।

निकृष्ट अध्यापन के इस जंगल से यही बात उभरकर सामने आती है कि यहाँ इंग्लिश की जगह हिंगलिश अथवा मेरी पूर्व पीढ़ी के अनुसार बाबू-इंग्लिश-क्लर्कों की भाषा बोलनेवाले लोग ही तैयार होते हैं।

बच्चे को ऐसे शैक्षिक वातावरण में धकेलना, जहाँ काम-काज की भाषा उसके घर की स्थानीय बोलचाल की भाषा से पूर्णतया भिन्न हो, उसके मन-मस्तिष्क और बौद्धिक विश्वास पर हास्यास्पद प्रभाव डालता है। यह सक्रिय एवं संपूर्ण शिक्षा की तुलना में व्यावहारिक जीवन में विखंडित मानसिकता को जन्म देती है। ध्यान रहे कि वास्तव में ऐसा मस्तिष्क के द्विभाषी विकास हेतु सकारात्मक प्रभाव के सर्वथा विपरीत है। इससे ऐसी स्थिति का निर्माण हो रहा है, जिसमें मिश्रित (हिंगलिश) भाषी तथाकथित शिक्षित भारतीय युवकों का बाहुल्य है और जो क्लर्क अथवा कॉल-सेंटर के कुली के स्तर से आगे नहीं जा पाते। हमारे लिए विशेष दुःखद बात तो यह है कि बड़े स्तर पर मानव संसाधनों के विकास की दृष्टि से यह निश्चित रूप से सांस्कृतिक गिरावट है। यह नवशिक्षित युवा न तो स्थानीय देशी भाषा और न ही अंग्रेजी में कुशल होता है। और व्यर्थ में इस प्रकार हम भारत को न केवल स्पष्ट रूप से मध्यम वर्ग में पाते हैं, अपितु यहाँ इसके स्तर को तेजी के साथ नीचे की ओर जाते हुए भी देखते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बी.बी.सी. की इसी रिपोर्ट से व्यक्ति निर्धनता के चक्र से विमुक्त होने की मिथ्या आकांक्षाएँ पालता रहता है।

गणित, विज्ञान और व्यापार

अंग्रेजी माध्यम के पक्ष में मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि यह गणित, विज्ञान और कंप्यूटर विज्ञान जैसे विषयों की स्वाभाविक भाषा है। यह अंग्रेजी

के भ्रम को फैलाने के कुचक्र का ही अंग है। यद्यपि यह सत्य है कि अधिक शोधपत्र अंग्रेजी में निकले हैं, परंतु वर्तमान में ऐसा वैश्विक स्तर पर अमेरिका के प्रभुत्व के कारण हुआ है। उदाहरण के तौर पर भारत में अंग्रेजी माध्यम से प्रशिक्षितों की तुलना में जर्मनी, जापानी और हिब्रू में स्नातक पूर्व स्तर पर विज्ञान पढ़नेवाले वैज्ञानिकों में से नोबल पुरस्कार विजेता कहीं अधिक संख्या में रहते हैं। अंतरराष्ट्रीय शोध कार्यों के अध्ययन हेतु आवश्यक अंग्रेजी ज्ञान को प्रोत्साहित किया जाना तो उचित है, परंतु भारत में 65 वर्ष से अधिक वर्षों तक केवल अंग्रेजी माध्यम वाले अभियांत्रिकी व मेडिकल विद्यालय अंतरराष्ट्रीय पत्रों में न तो कुछ विशेष उपलब्धि दर्ज कर पाए हैं और न ही भारतीय वैज्ञानिक कोई चमत्कारिक प्रभाव ही छोड़ पाए हैं। इसके कारणों की विवेचना के दौरान बार-बार यही तथ्य उभरकर आए हैं कि बच्चों को यथासंभव उच्च स्तर तक उनकी स्थानीय भाषा में शिक्षा के लाभ और परिणामत: ठोस और प्रासंगिक शोध, उच्च स्तरीय अनुसंधान व सृजनात्मक उपलब्धि का हेतु हो सकते हैं।

गणित एवं विज्ञान

अधिकांश आँकड़े दरशाते हैं कि जो विद्यार्थी गणित एवं विज्ञान अपनी मातृभाषा में पढ़ते हैं, वे अस्थानीय भाषाओं में इन विषयों को पढ़नेवालों की तुलना में अधिक मेधावी बनते हैं। विश्व के विविध देशों के अध्ययन में इन तथ्यों की निरंतर पुनरावृत्ति हुई है। बच्चे मातृभाषाओं में वैज्ञानिक अवधारणा को अधिक प्रभावी ढंग से ग्रहण कर पाते हैं और इस प्रकार से अर्जित ज्ञान को व्यावहारिक जगत् के साथ आसानी से जोड़ पाने में अधिक सक्षम होते हैं।

यूनेस्को का निर्देशन विशेष रूप से इस बात पर बल देता है।

यह स्वयंसिद्ध तथ्य है कि बच्चे के शिक्षण हेतु सर्वश्रेष्ठ माध्यम उसकी मातृभाषा होती है। मनोवैज्ञानिक तौर पर इससे अभिव्यक्ति और समझ की दृष्टि से उसके मानस पर स्वत: ही अर्थपूर्ण संकेत कार्य करते हैं। समाज विज्ञान के अनुसार यह संबंधित समुदाय के सदस्यों में पहचान का साधन बनती है। शैक्षणिक दृष्टि से वह इसके माध्यम से अपरिचित भाषाई माध्यम की तुलना में अधिक तेजी से सीखता है और मातृभाषा का प्रयोग शिक्षा के यथासंभव उच्च से उच्च स्तर तक होना चाहिए।[3]

तुर्की में एक अध्ययन से पता चला है कि विदेशी भाषा में विज्ञान पढ़नेवाले

विद्यार्थियों ने मातृभाषा में ऐसा करनेवालों की तुलना में अधिक भ्रांतियाँ और सिद्धांतों के ग्रहण करने में कमियाँ प्रदर्शित कीं। [4]

इसी प्रकार भारत में शिक्षण संबंधी विस्तृत ए.एस.ई.आर. रिपोर्ट में पाया गया है कि आंध्र प्रदेश में निजी क्षेत्र के अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों की तुलना में निजी क्षेत्रीय तेलुगु माध्यम के विद्यालयों में गणित, विज्ञान और सामाजिक शास्त्र के परिणाम काफी अच्छे रहे। [5]

मातृभाषा में विज्ञान अध्ययन से संबंधित परिणाम स्पष्टतया बेहतर पाए जाने के बावजूद भारत में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में भीड़ रहती है। जैसाकि हम देखेंगे, यह भीड़ असंगत भाषाई सरकारी नीतियों के फलस्वरूप है, जिनके अंतर्गत भारतीय भाषाओं के पाठकों के लिए उन्नति के उच्चतम स्तर उनकी अपनी भाषाएँ उपलब्ध नहीं करा पातीं। परिणामस्वरूप वे विज्ञान एवं व्यवसायमूलक उच्च शिक्षा अंग्रेजी में करने को विवश होते हैं और इसकी अनिवार्यता उनकी नियति बन गई है।

भारत का अंग्रेजी मोह कंप्यूटर प्रशिक्षण में बाधक

भारत में सॉफ्टवेयर सफलता के लिए प्रायः अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक बताया जाता रहा है। यद्यपि यह व्यवस्था अल्प अवधि के लिए ठीक हो सकती है, परंतु भारतीय नीति-निर्माताओं के अंग्रेजी मोह के दूरगामी परिणाम घातक होना निश्चित है। चीन में भारत की अपेक्षा समग्र शिक्षा दर अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की दर से काफी कम है। इसके बावजूद कंप्यूटर और इंटरनेट प्रयोग में चीन भारत से कई गुना आगे है।

	चीन	भारत
शिक्षा दर	95 प्रतिशत	74 प्रतिशत
अंग्रेजी भाषा	0.73 प्रतिशत	12 प्रतिशत (प्रवीणता 4 प्रतिशत)
इंटरनेट प्रयोगकर्ता	40 प्रतिशत	11.4 प्रतिशत

स्रोत : विश्व इंटरनेट आँकड़ा व विवरणिका, 2014 (मिनिवाट्स मार्केटिंग ग्रुप)

स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजी माध्यम कंप्यूटर शिक्षा के मार्ग में अवरोध और बाधा है। इससे भी अधिक रोचक आँकड़े यह दरशाते हैं कि भारत में भी इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं में 42 प्रतिशत लोग स्थानीय भाषाओं में इंटरनेट सामग्री खोजते हैं।[6] यह इस बात को इंगित करता है कि अधिकांश भारतीय, जिन्हें अंग्रेजी में कुछ ज्ञान है, भी वैकल्पिक परिस्थितियों में स्थानीय भाषा का प्रयोग उपयुक्त और सहज पाते हैं।

वास्तव में यह एक भ्रम है कि भारत में सॉफ्टवेयर के लिए अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि इसके अनेकों विरोधाभासी संकेत दिखाई देते हैं। दिल्ली से भी कम जनसंख्यावाला देश इजरायल हिब्रू प्रयोग के आधार पर ही प्रतिद्वंद्वी भारत के बावजूद सॉफ्टवेयर उद्योग चला रहा है, अत: निश्चित है कि भारत के नीति-निर्माताओं के अंग्रेजी मोह के दूरगामी परिणाम हमारे राष्ट्र के लिए घातक होंगे। चीन के लोग कंप्यूटर अपनी भाषा में ही सीखते व प्रयोग करते हैं। चीन में एक अच्छे कंप्यूटर प्रोग्रामर (अथवा इंजीनियर, अकाउंटेंट, डॉक्टर, वकील आदि) बनने के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तक कि ठेकागत व्यवसाय (सॉफ्टवेयर आउटसोर्सिंग) में भी चीन भारत को पछाड़ने की ओर अग्रसर है। उनकी कार्यपद्धति में अंग्रेजी बोलनेवाला एक प्रोजेक्ट मैनेजर अकेला विश्व के सभी बाहरी ग्राहकों से वार्त्तालाप के लिए पर्याप्त है, जबकि इस प्रक्रिया के पीछे दस चीनी भाषी प्रोग्रामर नियुक्त होंगे। मैंने (कार्ल) माइक्रोसॉफ्ट के लिए सॉफ्टवेयर परामर्शदाता के रूप में कार्य किया है। मेरे तटीय कार्यदल के सभी सदस्य चीन में ही जनमे व शिक्षित थे। स्वयं मेरा प्रबंधक यद्यपि अमेरिका में स्वाभाविक नागरिक की हैसियत से रहता एवं कार्य करता था, परंतु प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपने आपको अद्यतन अर्थात् ताजा जानकारी से लैस बनाए रखने के लिए चीनी भाषी पुस्तकों पर ही निर्भर था। मेरी गैर-तटीय (ऑफ शोर) टीम शंघाई में थी। उनमें से कुछेक ही अंग्रेजी का मात्र अल्प ज्ञान रखते थे। वही मेरे से बातचीत करते थे। गैर-तटीय टीम के बाकी सदस्य अंग्रेजी बिल्कुल नहीं जानते व बोलते थे। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि अंग्रेजी जाननेवाले वरीय या उच्च हों, ऐसा नहीं था। वे तो मात्र अमेरिकी और चीनी दल के बीच में संपर्क की भूमिका में ही थे। तकनीकी मुखिया और युवा टाइगर प्रोग्रामर सभी गैर-अंग्रेजी प्रवक्ता थे। इस प्रकार गैर-तटीय दल में माध्यमिक स्तर तक की अंग्रेजीवाला सदस्य, जिसके नीचे दर्जन

भर लोग कार्य करते थे, विदेशी ग्राहकों से समन्वय के लिए पर्याप्त था।

सॉफ्टवेयर संसाधनों के क्षेत्र में चीन की यही नीति उसे भारत की तुलना में अधिक तेजी के साथ आगे बढ़ने में सहायक है। अंग्रेजी को केंद्रबिंदु मानकर चलने की भारत की सोच के चलते चीन की प्रोग्रामी योग्यता के क्षेत्र में भारत को पछाड़ने की क्षमता और संभावना है।

इसीलिए हमारा ऐसा मानना है कि भारत को भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर प्रशिक्षण हेतु सर्वस्तरीय प्रयासों की आवश्यकता है। हम अपनी नीतिपरक सिफारिशों के अंतर्गत ऐसे परीक्षण सामने रखेंगे कि इसे व्यावहारिकता प्रदान करना कैसे सहज-संभव हो सकता है।

व्यावसायिक स्कूलों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा गैर-अंग्रेजी माध्यम का प्रयोग

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में हिंदी बोलनेवालों की संख्या 42 करोड़ से अधिक है। विश्व स्तरीय अनुमानों के अनुसार स्थानीय भाषाओं में बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी 5 प्रमुख भाषाओं में से एक है। समूचे विश्व में विभिन्न लोगों की स्थानीय भाषाओं में एम.बी.ए. पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। चीन, जापान, दक्षिणी कोरिया और अन्य अनेक राष्ट्रों में अधिकांश लोग एम.बी.ए. की उपाधि स्थानीय भाषा में प्राप्त करते हैं। ऐसे डिग्रीधारी व्यक्ति ही सैमसंग और टोयटा जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नेतृत्व करते हैं। यहाँ तक कि मात्र 80 लाख की आबादीवाले देश इजरायल में हिब्रू द्वारा विश्वस्तरीय उन्नत एम.बी.ए. पाठ्यक्रम उपलब्ध है, परंतु हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के विरुद्ध विशेष वर्ग हितैषी भेदभावपूर्ण सरकारी नीति के आधार पर एम.बी.ए. की प्रवेश परीक्षाओं में अंग्रेजी का एकाधिकार है, जिसके कारण भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग इन अवसरों से वंचित रह जाता है।

एशिया की मुख्य आर्थिक शक्तियाँ जापान, दक्षिणी कोरिया और ताईवान सभी गैर-अंग्रेजी माध्यम के राष्ट्र हैं। उनका व्यवसाय, अभियांत्रिकी, विज्ञान और अर्थशास्त्र सभी अपनी भाषाओं में चलता है। एशिया की प्रमुख 1000 बहुराष्ट्रीय कंपनियों में से 792 केवल इन्हीं देशों की हैं। विश्व व्यापक होंडा, टोयटा, सोनी, सैमसंग जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आंतरिक रूप से अपनी भाषाओं का ही प्रयोग करती हैं। सैमसंग के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी (सी.ई.ओ.) ने

एम.बी.ए. कोरियन माध्यम के पाठ्यक्रम से की है। अंग्रेजी आधारित भारतीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संख्या और प्रभाव की दृष्टि से नगण्य और महत्त्वहीन हैं।

यह विशेष रूप से त्रासदीपूर्ण है कि विश्व में 42 करोड़ से अधिक बोलनेवालों की संख्या के आधार पर हिंदी यद्यपि द्वितीय मुख्य भाषा है, परंतु अपने देश में यह उपेक्षित है। जबकि 7 करोड़ कोरियाभाषी जनसंख्या के साथ कोरिया और मात्र 80 लाख जनसंख्यावाले देश इजरायल में एम.बी.ए. का उन्नत पाठ्यक्रम क्रमशः कोरियाई और हिब्रू भाषा में उपलब्ध है। भारत में एम.बी.ए. पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी का एकाधिकार विशेष वर्ग के प्रति भेदभावपूर्ण सरकारी नीति के कारण ही है। गैर-अंग्रेजी भाषी आर्थिक शक्तियों में प्रमुख जापान, दक्षिणी कोरिया, जर्मनी, स्पेन, फ्रांस, चीन में एम.बी.ए. उनकी अपनी भाषाओं में पढ़ाई जाती है। विश्व की 20 प्रमुख आर्थिक शक्तियों में भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है, जहाँ इसके बहुसंख्यक वर्ग को एम.बी.ए. के अधिकांश पाठ्यक्रम मातृभाषाओं में अनुपलब्ध हैं।

स्कूल का नाम	स्थान	स्तर	भाषा
त्सिंघुआ वि.वि.	चीन	# चीन में द्वितीय # एशिया में 15वाँ	पूर्णकालिक एम.बी.ए. (चीनी में) अंशकालिक एम.बी.ए. (चीनी में) अंतरराष्ट्रीय एम.बी.ए. (अंग्रेजी में)
वसेदा बिजनेस स्कूल	जापान	# जापान में द्वितीय # एशिया में 33वाँ	जापानी व अंग्रेजी
सियोल राष्ट्रीय वि.वि.	कोरिया	# कोरिया में प्रथम	थोड़ी अंग्रेजी के साथ कोरियाई में।
दोंग्गुक वि.वि.	कोरिया	बौद्ध वि.वि.	कोरियाई सैमसंग का प्रमुख कोरियाई माध्यम के साथ दोंग्गुक का ही विद्यार्थी रहा है।
कामस	इजरायल	इजरायल में प्रमुख	हिब्रू
इंस्तितुतो डे	स्पेन	# विश्व में चौथा	स्पेनिश
एच इ सी पेरिस	स्पेन	# यूरोप में प्रथम	फ्रांसीसी (द्विभाषी विकल्प)
बोक्कोनी	इटली	इटली में प्रमुख	इटली में कार्यकारी एम.बी.ए.

□

भाग–3

नीतिगत सुझाव
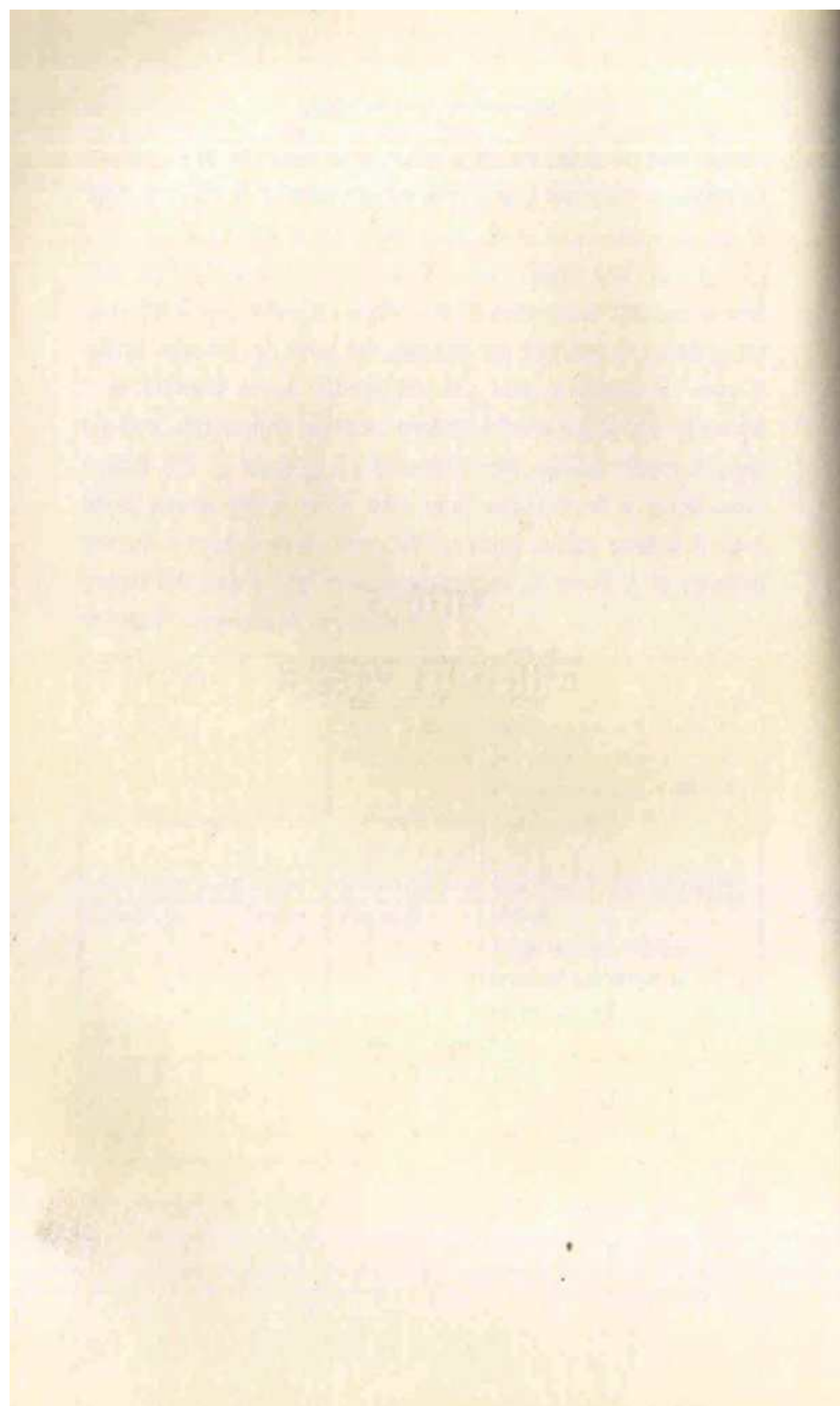
नई भाषा नीति का लक्ष्य और दृष्टिकोण

1. भाषा भेदभाव के बिना सभी भारतवासियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा को व्यापक आधार पर पहुँच प्रदान करके अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना।
2. सभी स्कूलों में दूसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी दक्षता का विस्तार करना, जबकि विशेष तौर पर अंग्रेजी माध्यम के उच्च शिक्षा के सामाजिक पदानुक्रम को नरम करना।
3. न्यायपालिका और अन्य सभी प्रशासनिक सेवा संस्थानों के लिए भारतीय भाषा के माध्यम के शिक्षार्थियों के लिए समान अवसर पैदा करना।
4. भारतीय भाषाओं को मजबूत बनाने और परंपरागत भारतीय ज्ञान मार्गों को पुनर्जीवित करने के लिए राष्ट्रीय संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली तैयार करना तथा अन्य भारतीय और एशियाई सभ्यताओं के साथ गहरा संबंध स्थापित करना।
5. सामाजिक विज्ञान की भारतीय समझ के विकास को बढ़ावा देकर और भारतीय भाषाओं के सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के गुरुत्वाकर्षण का केंद्र बदलकर प्रमुख पश्चिमी वर्चस्व को कम करना।
6. गतिशील पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भाषाओं के बीच राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय द्वारा वैश्विक प्रतिस्पर्धा में देशी भाषाओं को मजबूत करना।
7. भारतीय भाषाओं के पढ़ने के आधार का विस्तार करने के क्रम में भारतीय भाषाओं को सीखने के लिए कई बाधाओं को खत्म करना (जैसे विभिन्न लिपियों के रूप में) और पारस्परिक एवं एक-दूसरे के बीच अंतर्संबंध को प्रोत्साहित करना।

□

भारतीय भाषा आधारित तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा

'फोर्ड फाउंडेशन' द्वारा वित्तपोषित ताजा अध्ययन में पता चला है कि भारत में अंग्रेजी नहीं बोलनेवालों की तुलना में अंग्रेजी बोलनेवाले को अधिक वेतन मिलता है। इसे भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण को आगे बढ़ाने के रास्ते के रूप में इस्तेमाल किया गया। यह दिलचस्प है कि यह अन्य क्षेत्रों में एक से दूसरी प्रणाली की प्राकृतिक श्रेष्ठता से भेदभाव के बदले असमानताओं के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। भारत में भारतीय भाषाओं के प्रति भेदभाव का सबसे शक्तिशाली तरीका यह है कि यहाँ पूरी तरह से इंजीनियरिंग, चिकित्सा और व्यावसायिक शिक्षा अब भी अंग्रेजी में दी जा रही है। दुनिया के कई देशों में इन विषयों की पढ़ाई विभिन्न गैर-अंग्रेजी भाषाओं में कराई जा रही है। इनमें भारतीय भाषाओं की तुलना में भाषाई तौर पर बहुत छोटी आबादीवाले अधिकांश देश शामिल हैं।

आप इंजीनियरिंग की पढ़ाई, तुर्की में, थाई में, जापानी में, कोरियाई में और यहाँ तक कि कतालन में कर सकते हैं। कतालन स्पेन के एक क्षेत्र में मुश्किल से एक करोड़ या एक करोड़ 20 लाख लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा है, लेकिन हिंदी में आप ऐसा नहीं कर सकते हैं, जिसके पास देसी भाषा बोलनेवाले की संख्या 30 गुना अधिक है या तमिल, जो कम-से-कम सात गुना अधिक है। भारत में भारतीय भाषा सीखनेवालों के खिलाफ थोपी गई भेदभावपूर्ण व्यवस्था का नतीजा है। हम प्रस्ताव करते हैं कि इंजीनियरिंग और मेडिसिन जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की पूर्ण शिक्षा भारतीय भाषाओं में हो।

इस प्रयोजन के लिए इस दस्तावेज में हम भारतीय भाषा को परिभाषित करते हैं, जो संस्कृत आधारित वर्णमाला और व्याकरण प्रणाली का अनुकरण करता है। इसमें अलग-अलग दृष्टिकोण होंगे—

1. पाठ्य-पुस्तकों और तकनीकी शब्दावली का अनुवाद : एक राष्ट्रीय तकनीकी अनुवाद संस्थान को सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक आम संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। इस संस्थान को अन्य भाषाओं के साथ संस्कृत आधारित शब्दसंग्रह में समृद्ध थाई, तिब्बती, लाओस, जावानीस, मलय और इंडोनेशिया जैसे देशों से समन्वय करना चाहिए।

   (क) भारतीय भाषा की तकनीकी पाठ्य-पुस्तकों के वाक्यों में अंग्रेजी भाषा के समकक्ष संस्कृत के तकनीकी शब्दों को भी शामिल करना चाहिए।

   (ख) इसी तरह भारत में अंग्रेजी भाषा की तकनीकी पाठ्य-पुस्तकों के वाक्यों में संस्कृत शब्दों को बढ़ाया जाना चाहिए, ताकि ये छात्र भी इन नियमों के भारतीय समकक्ष शब्दों से परिचित हो सकें।

   (ग) चीन में जैसाकि संयुक्त बहुभाषी पाठ्य-पुस्तकों की उपलब्धता है, उस तरह का एक विकल्प यहाँ भी हो सकता है।

2. मौजूदा इंजीनियरिंग, चिकित्सा और व्यावसायिक कॉलेजों में भारतीय भाषा के समानांतर कोर्स की व्यवस्था होनी चाहिए। मौजूदा इंजीनियरिंग कॉलेजों में अतिरिक्त सीटों और शिक्षण स्टाफ बढ़ाना चाहिए, जो भारतीय भाषाओं में पढ़ा सकें, जहाँ संपूर्ण शिक्षण की व्यवस्था हो। शुरुआती तौर पर अंग्रेजी तकनीकी शब्दों के साथ भारतीय भाषा का इस्तेमाल मौखिक निर्देश के लिए किया जा सकता है, जब तक कि भारतीय भाषा तकनीकी शब्दावली का विस्तार न हो जाए।

   (क) प्रोफेसरों के एक प्रतिबद्ध समूह की भरती की आवश्यकता होगी। हम सलाह देते हैं कि यह कार्यक्रम सबसे पहले आईआईटी में शुरू किया जाए। प्रत्येक आईआईटी की क्षेत्रीय भाषा के आधार पर पढ़ाई की भाषा चुनी जाए। आईआईटी

दिल्ली, जहाँ बड़ी संख्या में छात्रों का एडमिशन होता है, वहाँ 'पायलट परियोजना' के तौर पर जेईई के लिए हिंदी माध्यम का इस्तेमाल किया जा सकता है।

(ख) इसी तरह से एक या दो मेडिकल कॉलेजों में चिकित्सा शिक्षा की पहल का नेतृत्व करने के लिए चुना जाना प्रस्तावित है। आईआईएम को हिंदी या गुजराती माध्यम से बिजनेस स्ट्रीम की शुरुआत के लिए चुना जा सकता है। इस तरह से भारतीय शिक्षा तंत्र में व्यापक कार्यान्वयन किया जा सकता है।

3. लक्ष्य यह रहेगा कि भारत के सभी इंजीनियरिंग, चिकित्सा और व्यावसायिक कॉलेजों में अंग्रेजी माध्यम की सीटों के अनुरूप ही भारतीय भाषा की सीटों को बराबर किया जाए। पाँच साल की अवधि के अंत तक अनिवार्य रूप से इन संस्थानों की समग्र क्षमता दोगुनी हो।
4. सभी प्रवेश परीक्षाओं को समान रूप से भारतीय भाषाओं का समर्थन करना चाहिए। सभी पेशेवर कॉलेजों में प्रवेश के लिए एक पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में करने के बजाय आवश्यक रूप में भाषा शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। भारतीय भाषाओं के छात्रों को अंग्रेजी क्लास में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए। हालाँकि अंग्रेजी के तकनीकी दस्तावेजों की भाषा की पढ़ाई के लिए अनुवाद की जरूरत नहीं है।

   इसी तरह, सभी अंग्रेजी माध्यम स्ट्रीम के छात्रों को भारतीय भाषा तकनीकी दस्तावेजों के साथ भारतीय भाषा की पढ़ाई के लिए उनकी कक्षाओं में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए। इससे भी उन्हें संस्कृत में तकनीकी शब्दावली की संरचना लागू करने में मदद मिलेगी।
5. अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रों की केंद्रीय स्तर पर खरीदारी होनी चाहिए और उनकी स्वचालित लिपि बदलने की व्यवस्था तथा अनुवाद प्रणाली के साथ व्यापक तौर पर ऑनलाइन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इन शोध-पत्रों का अंग्रेजी से परे दुनिया भर के अन्य भाषाओं में विस्तार करना चाहिए।
6. भारतीय भाषाओं में तकनीकी सम्मेलनों का आयोजन किया जाना चाहिए।

7. आईआईएम को भी भाषा के मामले में इस तरह का जरिया अपनाना चाहिए। जिस राज्य में आईआईएम है या जहाँ भी उनके कैंपस हैं, वहाँ की भाषा में पढ़ाई या प्रवेश की व्यवस्था होनी चाहिए। कॉमन एडमिशन टेस्ट (कैट) सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में कराया जाना चाहिए।

संभावित आपत्तियाँ और उनके जवाब

1. अगर एक स्कूल का छात्र किसी स्कूल से या किसी कंपनी से एक पेशेवर का अलग भाषा क्षेत्र में स्थानांतरण होता है, तो क्या होगा? बिना सामान्य अंग्रेजी भाषा के उच्च शिक्षा में छात्रों का विस्थापन और श्रम पलायन भी संभव नहीं होगा।

सबसे पहले, भारत में स्थानीयकरण पहले से ही कई क्षेत्रों में सच्चाई है। हम चिकित्सा क्षेत्र में यह देख सकते हैं। मसलन हैदराबाद जैसे चिकित्सा केंद्र में नर्सें मुख्य रूप से तेलुगू में बातें करती हैं। इसलिए आदेश पर अमल कराने के लिए डॉक्टरों को तेलुगू भाषी होना चाहिए।

2. एक कॉमन संस्कृत आधारित शब्दावली बनाई जाए। हालाँकि यह एक क्षेत्रीय भाषा से दूसरी में बदलने के लिए बड़ी छलाँग नहीं है। क्षेत्रीय अंतर-संचालन की क्षमता ही इस नई भाषा नीति की प्राथमिकताओं में से एक है। भारतीय भाषाओं के बीच भाषाई अंतराल बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है। इसका कारण है लिपियों में अंतर और अंग्रेजी पर भरोसा। भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली के मानकीकरण के लिए कोई केंद्रीकृत दृष्टिकोण भी नहीं है।

इसलिए संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली से अधिक-से-अधिक लोगों तक क्षेत्रीय भाषाओं की पहुँच बनेगी। इसके अलावा लैटिन/अंग्रेजी की शर्तें भी कायम रखनी चाहिए। सभी भारतीय स्नातक पेशेवरों को समान रूप से दोनों भाषाओं की जानकारी होनी चाहिए।

3. क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं का काफी विस्तार करने की जरूरत है और यह केवल तभी संभव है, जब स्थानीय शिक्षा प्रणाली की क्षमता बढ़ाई जाए। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलने से ज्यादातर क्षेत्रीय प्रतिभाओं को अवसर मिलेंगे।

वर्तमान में अंग्रेजी विशिष्टता के साथ जो हो रहा है, वह यह है कि अंग्रेजी से वंचित पृष्ठभूमि के ज्यादातर क्षेत्रीय श्रमिकों की क्षमता का उपयोग सीमित दायरे में हो पाता है। गुणवत्तायुक्त अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों तक पहुँच केवल कुछ लोगों की हो पाती है, जो सामाजिक सीढ़ी चढ़ सकते हैं। केवल ये लोग ही बाद में सब क्षेत्रों में गतिशील होते हैं। शिक्षा का प्राकृतिकीकरण मानव संसाधन विकास में एक बड़ी छलाँग साबित होगी और इसके साथ अर्थव्यवस्थाओं का भी विस्तार होगा। यदि हम सिर्फ एक बार अंग्रेजी चश्मे को दरकिनार कर दें तो भारतीय भाषाओं को पूर्णरूपेण सीखना आसान और पारस्परिक रूप से सुगम है।

संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली

विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी और कानून के लिए एक अखिल भारतीय तकनीकी शब्दावली का विकास करने के लिए संस्कृत सबसे अनुकूल है। अंग्रेजी तकनीकी शब्दावली काफी हद तक लैटिन पर आधारित है और उसमें अधिकतर यूरोपीय भाषाओं का व्यापक समावेश है। लैटिन व्याकरण और शब्दावली भी संस्कृत के समानांतर और एक ही जड़ से उपजी हैं।

यूरोप में जिस तरह से लैटिन भूमिका निभा रही है, उसी तरह भारत में संस्कृत ने भूमिका निभाई है। संस्कृत भारतीय भाषाओं के साथ उनके व्याकरण और शब्दावली भी प्रदान करती है। यह लैटिन से भी संबंधित है। उदाहरण के लिए, 'डेंटल' शब्द मेडिकल की भाषा में लैटिन आधारित है, लेकिन यह शब्द वास्तव में 'दंता' शब्द सरीखा है। संस्कृत का यह शब्द और लैटिन का शब्द 'डेंटल' की जड़ एक जैसी ही लगती है। इसके अलावा, संस्कृत व्याकरण एक प्रणाली को भी शामिल करती है, जो संस्कृत की जड़ों या धातुओं के आधार पर नए शब्दों का निर्माण करती है।

संस्कृत का देशी भाषाओं के साथ कोई जैविक संबंध है और वे दोनों एक साथ रचनात्मक भाषाई पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा हैं। देशी भाषाओं से संस्कृत के शब्द लिये गए हैं और व्यवस्थित होकर संस्कृत में शामिल किए गए शब्द वापस देशी भाषाओं में पाए जाते हैं।

संस्कृत की बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने बृहत् अखिल भारतीय सभ्यता ही नहीं, बल्कि तिब्बत से वियतनाम तक व्यापक असर डाला है। तिब्बती,

थाई, वियतनामी, 'बहासा' मलय और इंडोनेशिया, सभी भारी संख्या में संस्कृत शब्दों के ऋणी हैं। ये देश भी अपनी भाषाओं में तकनीकी शिक्षा शुरू कर रहे हैं। तकनीकी संस्कृत आधारित शब्दावली की शुरुआत से एक आम शब्दावली बनेगी और इसके प्रभाव से पूरे भारतीय क्षेत्र में एक और घनिष्ठ सहयोग बनाने के लिए स्वीकृति मिलेगी।

इंडोनेशिया, मलेशिया और ब्रुनेई ने कॉमन वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए एक संयुक्त आयोग का गठन किया है। उन्होंने पुरानी मलाया में प्रचुर संस्कृत शब्दावली का समावेश किया है। इससे हमें इन देशों के साथ समन्वय और पुरातन सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने में मदद मिलेगी।

संभावित आपत्तियाँ और उनके जवाब

1. अगर अंग्रेजी को पूर्व अपेक्षित बनाया जाता है, तो फिर उच्च शिक्षा से बड़ी संख्या में लोग वंचित रह जाएँगे और कुलीन वर्ग पैदा होगा। इसलिए संस्कृत शब्दावली की शुरुआत करनी होगी। संस्कृतीकरण उत्कृष्टता का एक प्रकार है, पर अंतर क्या है?

पहला, यह कि सीखने के तरीके में अंतर है। संस्कृत बहुत ही संरचित और गणितीय भाषा है तथा अंग्रेजी की तुलना में इसकी शिक्षा अधिक तर्कसंगत है। संस्कृत शब्दावली पहले से ही दक्षिण भारतीय लोगों सहित सभी भारतीय भाषाओं का एक बड़ा हिस्सा है। संस्कृत सीखना उन नियमों को जानने की बात है। अगर प्राकृतिक शिक्षण पद्धति लागू की जाती है तो (उदाहरण के लिए, संस्कृत भारती द्वारा संस्कृत बोलने की विधि प्रयोग में लाई जाती है), भारतीय भाषा बोलनेवालों द्वारा स्वाभाविक रूप से संस्कृत दक्षता प्राप्त की जा सकती है। दूसरी तरफ, अंग्रेजी कहीं भी व्यवस्थित और तार्किक रूप में नहीं है। इसलिए किसी व्यक्ति के अंग्रेजी बोलने की गुणवत्ता बहुत कुछ एंग्लो सैक्सन संस्कृति में विलय और समाजीकरण पर निर्भर करती है, जो ज्यादातर भारतीयों के लिए तत्काल उपलब्ध नहीं है। यह उन कुछ भारतीयों के खिलाफ है, जिससे बहुत बड़ा नुकसान पहुँचता है, जिनके परिवार के पास अंग्रेजी शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है या जो महानगरीय क्षेत्रों में रहते हैं, उनके लिए ज्यादातर भारतीयों की तुलना में अंग्रेजी का इस्तेमाल आसान है।

दूसरा, संस्कृति भी एक कारक है। जैसाकि ऊपर बताया गया है, संस्कृत और देशी भाषाओं के बीच एक जैविक रिश्ता है। संस्कृत और देशी भाषाएँ अखिल भारतीय सभ्यता के विचारों एवं संस्कृति में निहित हैं। इसलिए भारत के किसी भी हिस्से में देशी भाषा बोलनेवाले को संस्कृत सीखने में किसी भी तरह से दिक्कत नहीं होगी। साथ ही, वे एक उच्च स्तर की भाषा सीखने के सभी लाभ हासिल कर सकेंगे। दूसरी तरफ, अंग्रेजी और उसके मुहावरे औसत भारतीय के लिए विदेशी हैं, जो कुछ होने की एक निश्चित भावना पैदा करने का कारण बनते हैं, जोकि किसी के पास नहीं है, बल्कि जो कुछ किसी व्यक्ति के खुद पूर्वजों ने पैदा किया, केवल उनमें ही लाभ बढ़ रहा है। इसलिए ज्यादातर भारतीय अंग्रेजी सीखते हैं, ताकि एक नई भाषा सीखने का लाभ प्राप्त हो। वे लंबी अवधि में लाभ हासिल करने के बदले सांस्कृतिक नुकसान का भी अनुभव प्राप्त करते हैं।

□

राष्ट्रीय संस्थानों में भाषा की रूपरेखा

स्थिति यह है कि अंग्रेजी भाषा ने राष्ट्रीय संस्थाओं और इस्पात ग्रिड में प्रवेश एवं प्रगति हेतु एक अभिजात वर्ग को जन्म दिया है। औपनिवेशिक अभिजात वर्ग की इसी भाषा ने सामाजिक भेदभाव को अवशेष के रूप में छोड़ा है। अंतर केवल इतना है कि अब अंग्रेजों का स्थान भारतीयों ने ले लिया है। आश्चर्य तो यह है कि राजनीतिक और सामाजिक नेताओं ने भी स्थिति में सुधार की अपेक्षा इस भेदभाव को और सुदृढ़ करते हुए इसे और बल प्रदान किया है।

संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाएँ

संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) लिखित और मौखिक परीक्षाएँ सामान्यत: संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 भारतीय भाषाओं में से किसी एक भाषा के साथ ही अंग्रेजी में भी आयोजित होती हैं। यह परीक्षा राष्ट्रीय प्रशासनिक, पुलिस और विदेशी सेवाओं एवं अन्य नागरिक सेवाओं में प्रवेश के लिए चयन प्रक्रिया का प्रथम चरण है। देश भर में विविध पृष्ठभूमि के प्रत्याशी अनेक महीनों और वर्षों की तैयारी के बाद इन परीक्षाओं में उपस्थित होते हैं।

5 मार्च, 2013 को यह घोषणा कि ये परीक्षाएँ अब केवल अंग्रेजी और हिंदी में होंगी, हजारों प्रत्याशियों के लिए एक बड़ी चिंता का विषय बन गई थी। अपनी क्षेत्रीय व मातृ भाषाओं के अपमान की व्यापक अनुभूति के अतिरिक्त सिविल सर्विसेज के सामान्य परीक्षार्थियों में इस घोषणा से एक हड़कंप सा मच गया। संघ लोक सेवा आयोग और केंद्र सरकार के विरुद्ध आयोजित प्रदर्शन संभवत: इस बात का संकेत था कि विभन्न भारतीय भाषाओं के प्रति आत्मसम्मान

की भावना अभी समाप्त नहीं हुई। इस विषय को लेकर अनेक राज्यों की विधानसभाओं में भी हंगामे हुए। अंततः परेशानी और अपमान झेलने के बाद संघ लोक सेवा आयोग ने 5 मार्च को की गई अपनी घोषणा को उसी महीने की 22 तारीख को संशोधित कर दिया। यह ज्ञात नहीं हो पाया कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकल्प से परीक्षार्थियों को वंचित करने के विचार की उत्पत्ति का स्रोत क्या था? नीति में उक्त परिवर्तन के पीछे यूपीएससी व संभवतः यूपीए सरकार में इसके लिए कौन उत्तरदायी होगा, कह पाना कठिन होगा।

वैसे भी, आई.ए.एस., आई.एफ.एस. आदि के अभ्यार्थियों को कठिन चयन प्रक्रिया से निकलने के पश्चात् उन्हें प्रतिष्ठित प्रशिक्षण कार्यक्रम उत्तीर्ण करना होता है, यह पूरी प्रक्रिया व पाठ्यक्रम ब्रिटिश औपनिवेशिक शासनकाल से बिना किसी परिवर्तन के ज्यों-की-त्यों चला आ रहा है। यहाँ तक कि परिसर, वातावरण, पाठ्यक्रम, मनोवृत्ति और आचार-व्यवहार भी नहीं बदले हैं। इस वातावरण में अंग्रेजी को पहले से ही विशेषाधिकार प्राप्त है। दूरदर्शिता से क्रमिक स्वदेशीकरण की दृष्टि से इस पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं को अब तक सम्मिलित होना चाहिए था। जबकि स्वतंत्रता के कई दशक उपरांत भी हिंदी के मात्र सांकेतिक समावेश के अपवाद को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रीय भाषाओं को तिरस्कृत किए जाने के प्रयास सामने आते हैं। यह संभवतः हमारी कुविचारित भाषा नीति का ही परिणाम है।

भाषा नीति तैयार करने में हमारा लक्ष्य है—भारतीय भाषाओं के शिक्षार्थियों को अंग्रेजी माध्यम के लोगों की बराबरी में लाना, बल्कि उनसे बेहतर बनाना। अंग्रेजी योग्यता को मानदंड बनाने की अपेक्षा हमें भारतीय भाषाओं को समानता की स्थिति में लाना चाहिए और आवश्यकता होने पर अंग्रेजी चयन उपरांत प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकती है। यदि अंग्रेजी ज्ञान की परीक्षा ली भी जाती है, प्राप्त अंकों को योग्यता निर्धारण का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए, बल्कि अन्यथा चयन हो जाने की स्थिति में संबंधित व्यक्ति को केवल अंग्रेजी प्रशिक्षण कार्यक्रम नामित किया जाना चाहिए।

अनुशंसाएँ

1. यू.पी.एस.सी. परीक्षा में 300 अंक के अनिवार्य अंग्रेजी पत्र को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

2. अंग्रेजी को चयन मापदंड का आधार नहीं होना चाहिए। चयन उपरांत अंग्रेजी में प्रवीणता की आवश्यकता होने की स्थिति में इसे प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है।

सशस्त्र सेनाएँ

रक्षा सेवाओं के लिए मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की डिग्री एक शर्त है, विशेषकर नौसेना और वायु सेना अकादमी के लिए इंजीनियरिंग और गणित की डिग्री। भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्थिति यह है कि अंग्रेजी कौशल्य की आवश्यकता स्वत: लागू हो जाती है। फिर भी अंग्रेजी प्रवीणता से संबंधित स्थिति यह है कि अधिकारियों को इसके लिए परीक्षा देनी पड़ती है, परंतु सशस्त्र बलों के निचले पदों के लिए इसकी आवश्यकता नहीं है।

अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे स्वयं देशी भाषाएँ जानें और अपने अधीनस्थ लोगों से बातचीत भी देशी भाषा में ही करें। सशस्त्र बलों में यह दोहरी व्यवस्था अब भी उच्च और निम्न का भेदभाव करनेवाली पारंपरिक औपनिवेशिक संस्कृति है। इस प्रकार भेदभाव के आधार रूप में भाषा अब अंग्रेज जाति का ही स्थान ले रही है अर्थात् भेदभाव का आधार अब जाति न होकर भाषा बनी हुई है।

अत: यू.पी.एस.सी. की तरह अंग्रेजी की इस स्थिति को समाप्त होना चाहिए। अंग्रेजी भाषीय परीक्षा की अनिवार्यता अधिकारियों की योग्यता के निर्धारण का अंग नहीं होनी चाहिए। आवश्यकता अनुसार अंग्रेजी या हिंदी भाषा का प्रशिक्षण नियुक्ति के बाद दिया जा सकता है। वर्तमान में अधिकारी अपने सैनिकों से बात तो हिंदी में करते हैं, पर कार्यालय का काम-काज अंग्रेजी में करते हैं। भाषा संबंधी इस दोहरी व्यवस्था को चरणबद्ध तरीके से समाप्त कर हिंदी को सशस्त्र सेनाओं की भाषा के रूप में स्थापित करने की दिशा में प्रयास होना चाहिए।

विधि व्यवस्था

ब्रिटेन में विधि व्यवस्था 'इंग्लिश कॉमन लॉ' से विकसित हुई। वहाँ पर प्रथाओं की निरंतरता और प्रचलित सम्मति को कानून के रूप में स्थापित किया गया। भारत में हमने न केवल ब्रिटिश कानून को ही अपनाया बल्कि उसकी

लिखित भाषा को भी ले लिया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह हम पर थोपे गए एक विदेशी कानून की अनुभूति देता है।

भारतीय भाषाएँ प्राकृतिक दार्शनिकता का आधार लेकर चलती हैं, जिससे वे अधिक प्रभावी और स्वीकार्य हो जाती हैं। कानून को अपने अधिकार-क्षेत्र में वहाँ की संस्कृति के साथ निश्चित रूप से जुड़ा होना चाहिए। इस प्रकार नियम, तर्क, न्यायिक विवेक आदि स्थानीय भाषा में ही निरूपित हो सकते हैं।

उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी की अधिकता

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में सभी सरकारी दस्तावेजों में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। भारत में कानून की भाषा भी अंग्रेजी है और ब्रिटिश अधीनस्थ सभी क्षेत्रों में 1835 से यही व्यवस्था विद्यमान है। सन् 1949 में स्वतंत्र भारत के संविधान ने कानून और प्रशासन की भाषा के रूप में अंग्रेजी को जारी रखने का निर्णय लिया। अनुच्छेद 348 में यह व्यवस्था की गई है कि सर्वोच्च न्यायालय और सभी उच्च न्यायालयों की भाषा के साथ ही संसद् या किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित सभी विधेयक और संशोधन, अधिनियम, अध्यादेश, नियम तथा उपनियम आदि की भाषा अंग्रेजी में होगी। प्रावधान यह भी है कि किसी राज्य का राज्यपाल राज्य प्रशासन या उस राज्य के उच्च न्यायालय को स्थानीय भारतीय भाषा के प्रयोग की सहमति दे सकता है। निस्संदेह, संविधान में उल्लिखित निर्देश अनुसार यह व्यवस्था है कि 15 वर्ष के भीतर ही अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को चरणबद्ध ढंग से समाप्त कर धीरे-धीरे स्थानीय राष्ट्रीय भाषा (जिसके लिए हिंदी को चुना गया) को लागू करने के प्रयास होने चाहिए।

आज अपीलीय स्तर के न्यायालयों में, जहाँ गवाहों और वादियों को सीधे तौर पर सुना जाता है, उनमें राज्य की अन्य भाषाओं का आधिकारिक उपयोग किया जा सकता है। परंतु होता यह है कि अपीलीय अदालतों में केवल वकील ही वादियों का पक्ष रखते हैं, जो अधिकांशतया परंपरा से अंग्रेजी में सक्षम होने के कारण अंग्रेजी में ही अपना पक्ष रखते हैं। कानून के निर्माता उच्च न्यायालय में अन्य भाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकते हैं, परंतु अभी तक हिंदी भाषी राज्यों में केवल चार उच्च न्यायालयों—राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में ही ऐसी व्यवस्था हुई है। 2013 के अप्रैल में तमिलनाडु की मुख्यमंत्री ने राष्ट्रीय कानून निर्माताओं से आह्वान किया कि चेन्नई उच्च न्यायालय में तमिल

को भी अधिकृत भाषा के रूप में लागू किए जाने की अनुमति दी जाए।

उच्च न्यायालयों में भारतीय भाषाओं को लागू करने के विरोध में कुछ क्षेत्रों ने तर्क यह दिया कि और अपीलीय अदालतों में शायद ही भारतीय भाषाओं में सुनवाई होती है। उच्च न्यायालय में अधिकतर अपीलीय मामलों की काररवाई ऐसे अधिवक्ताओं व वकीलों द्वारा प्रस्तुत की जाती है, जिन्होंने प्रारंभ से ही अंग्रेजी में कानून सीखा। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षित वकील और न्यायाधीशों के कारण उच्च अदालतों में देसी भाषाओं का प्रयोग मात्र सांस्कृतिक संरक्षण तक सिमटकर रह जाता है। परिणाम यह होता है कि न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत आम लोग न तो स्वयं कोई तर्क कर सकते हैं और न ही वे उनकी ओर से दिए जा रहे तर्कों को समझ पाते हैं। साथ ही केवल अंग्रेजी पढ़े-लिखे वकील और न्यायाधीश गैर-अंग्रेजी विद्यार्थियों को इन पदों पर आने से रोकते रहे हैं। मलेशिया जैसे देश ने अपनी उच्च अदालतों में बहासा (भाषा) को लागू करने के लिए व्यवस्थित प्रयास किए हैं। वहाँ निर्णय अंग्रेजी या बहासा में लिखे जा सकते हैं। भारत में ही केवल अंग्रेजी की अयुक्तिपूर्ण नीति चल रही है, जो 21वीं शताब्दी के युग में भी मानव अधिकारों का उल्लंघन है।

संस्तुतियाँ—न्यायिक सुधार में भाषा उन्नयन को अवश्य सम्मिलित होना चाहिए

भारत में त्वरित न्याय उपलब्ध कराने के लिए न्यायिक प्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता है। सामान्य संस्कृत शब्दावली के साथ न्यायिक प्रक्रिया और कानून सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने चाहिए। अंग्रेजी से हिंदी व हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद की तुलना में भारतीय भाषाओं के सामान्य वैचारिक मूलाधार एवं परस्पर अत्यधिक समानता के दृष्टिगत उनमें एक भाषा से दूसरी भाषा में सटीक अनुवाद अधिक सरलता के साथ किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में सामान्य आधार पर बने कानून ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के लिए बोधगम्य और समझने में सरल होंगे। उस स्थिति में कोई भी व्यक्ति देशी भाषाओं के माध्यम से आसानी से कानूनी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। हमने उच्च शिक्षा हेतु 'देशी भाषा और संस्कृत में प्रवीणता' वाले अध्याय में भी यह सुझाव दिया है कि कानून और मानविकी जैसे गैर-विज्ञान विषयों के लिए संस्कृत भाषा अनिवार्य होनी चाहिए। इससे यथास्थिति बनाए रखने से संबंधित

तर्कों को घटाकर न्याय में शीघ्रता लाने के दूरगामी परिणाम मिलेंगे।

भारत में त्वरित न्याय की व्यवस्था हेतु न्याय प्रणाली में तुरंत सुधार की आवश्यकता है। कानूनी प्रक्रियाओं के साथ ही कानून को संस्कृत में पुन: संहिताबद्ध कर भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद होना चाहिए। तब कोई भी विभिन्न देशी भाषाओं में से किसी एक के माध्यम से कानूनी शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

यद्यपि कुछ वर्षों तक उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकता है, परंतु कानून की शब्दावली आवश्यक रूप से संस्कृतनिष्ठ व संस्कृत आधारित हो, जिसे 'भारतीय अंग्रेजी' में अपनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, 'सैक्युलरिज्म' जो एक भिन्न धर्म में, भिन्न ऐतिहासिक अनुभव के संदर्भ से जुड़ा शब्द है, अत: भारतीय संदर्भ में इसके स्थान पर 'धर्म-निरपेक्ष' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। संशोधित शिक्षा नीति के अंतर्गत न्यायाधीश का पद देशी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत में प्रवीण लोगों के लिए आरक्षित होना अपेक्षित है। कानून में अस्पष्टता की स्थिति में संस्कृत के मूल पाठ को अधिकृत मानते हुए उसे प्राथमिकता दी जाए।

प्रश्न उठता है कि हमारे बहुभाषी राष्ट्र में व्यावहारिक स्तर पर यह कैसे संभव होगा? प्रथमत:, वकीलों/अधिवक्ताओं को सुप्रीम कोर्ट में राष्ट्रीय भाषाओं में से किसी एक और उसी प्रकार राज्यों के उच्च न्यायालयों में राज्य की भाषाओं में से किसी एक में वकालत करने के लिए अनुमति दी जानी चाहिए। आवश्यकता होने पर न्यायिक अनुवादकों को अनुवाद के लिए तत्काल उपलब्ध कराया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालयों का निर्णय किसी भी भारतीय भाषा में दिया जा सकता है और अन्य अपेक्षित भाषाओं में उसका अनुवाद किया जा सकता है। स्वत: अनुवाद के क्षेत्र में प्रगति के साथ भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद करना सरल हो जाएगा। उस स्थिति में इस परियोजना की कल्पना और भी व्यावहारिक प्रतीत होती है।

सिद्धांत व उद्देश्य यह है कि सभी को मात्र एक भाषा विशेष के लिए बाध्य करने की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थानीय भाषा पढ़ने-लिखने में सक्षम होना चाहिए। अनुवाद की तकनीकी चुनौतियों पर विजय पाई जा सकती है, परंतु प्रत्येक व्यक्ति को मात्र एक भाषा-विशेष के लिए विवश करने से होनेवाली

मानवीय लागत पर नहीं। इस लिए सभी भारतीय भाषाओं के अनुवाद हेतु मौलिक ढाँचे को उन्नत कर बहुभाषी भाषा नीति अवश्य लागू होनी चाहिए। एक या दो पीढ़ी के बाद संस्कृत और भारतीय देशी भाषाओं में साक्षरता निश्चित रूप से बढ़ेगी। उस स्थिति में अनुवाद का मौलिक ढाँचा स्वयं ही सरल हो जाएगा।

संभावित आपत्तियाँ और उनका निराकरण

1. इसे लागू करना इतना अव्यावहारिक सा है कि इसे लागू नहीं किया जा सकता। सिविल सेवाओं के वर्तमान अधिकारीगण और न्यायपालिका के सदस्य भाषा के विविधीकरण को अत्यंत असहज पाएँगे।

उत्तर—चरणबद्ध परिवर्तन की सोच कदाचित् असुविधाजनक नहीं है। हमारे समक्ष मलेशिया के रूप में एक देश का उदाहरण है, जहाँ संपूर्ण न्यायिक व्यवस्था को अपनी निजी भाषा में बदलने की प्रक्रिया लागू की जा चुकी है। भारत में भी इसे एक पीढ़ी में ही आसानी से लागू किया जा सकता है।

भारत में पहले से ही यह देखा गया है कि उच्च न्यायालयों में हिंदी और तमिल के प्रयोग के लिए राजनीतिक और जनता का दबाव रहा है, परंतु सुसंगत बहुभाषी नीति के अभाव में यह राष्ट्रव्यापी नहीं हो पाया। इस प्रकार सभी क्षेत्रीय भाषाओं की आकांक्षाओं को एक स्वर देने के लिए एक केंद्रीय निकाय का अभाव मौलिक समस्या है। इसे गति प्रदान करने की आवश्यकता है। एक बार सभी भारतीय भाषाओं के प्रति समान रूप से पहुँच का सिद्धांत अपनाया जाए और साथ ही अनुवाद सेवाओं को भी इस प्रक्रिया का एक अंग बनाया जाए, तो इसकी सफलता निस्संदेह है। एक बार यदि समान अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो जनता की पसंद और आकांक्षाएँ स्वतः बलवती होंगी।

2. भारत में अंग्रेजी क्षमता और योग्यता का एक स्तर दरशाती है। यदि सिविल सेवाओं में गैर-अंग्रेजी भाषी व्यक्तिओं को लिया गया तो इससे उन सेवाओं का स्तर गिर सकता है।

उत्तर—यह एक गलत धारणा है। व्यक्ति की क्षमता पूर्णतया उसके द्वारा प्राप्त शिक्षा और प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। आँकड़े बताते हैं कि आई.आई.टी., जेईई के लिए मराठी और हिंदी भाषा में परीक्षा देकर प्रवेश पानेवालों की संख्या अंग्रेजी भाषा के परीक्षार्थियों की तुलना में अधिक रही है।

□

प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा

उच्च शिक्षा व्यवस्था को भारतीय भाषाओं में एक ही झटके में लाना संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए योजनाबद्ध कार्यान्वयन कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर इसे लागू करने की प्रक्रिया सुनिश्चित कर आगे बढ़ाना चाहिए। उसके पश्चात् सभी हितधारकों—शिक्षाविदों, उद्योगपतियों, समाजशास्त्रियों, सरकार और कर्मचारियों से सक्रिय प्रतिक्रिया के आधार पर पग-पग पर उसके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता होगी। इस हेतु समय- सीमा निर्धारण करने के उद्देश्य से अंतर पीढ़ीगत परिप्रेक्ष्य को सामने रखकर नीति की रूपरेखा बनानी होगी।

तर्क, स्तर और प्रक्रिया

प्राकृतिक भाषाओं को शिक्षा और प्रशिक्षण का माध्यम बनाने के लाभ स्वाभाविक हैं और यह अनेक प्रकार से प्रभावशाली होता है। इसके पीछे मौलिक तर्क ये हैं—

1. शिक्षण की भाषा का छात्रों और उनके द्वारा अध्ययन किए जा रहे विषयों के बीच के संबंध पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह सभ्यता की भावी रचनात्मकता पर दूरगामी प्रभाव डालती है।
2. अनेक वैज्ञानिक अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि छात्रों को विभिन्न विषयों की शिक्षा अपनी भाषाओं में लेने का निश्चित रूप से लाभ होता है।
3. भारत की स्वीकृत देशी भाषाओं की संख्या लंबी है, जिनमें से प्रत्येक एक क्षेत्र विशेष और जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है।

4. स्पष्ट है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रासंगिक बने रहने के उद्देश्य से प्रत्येक भारतीय भाषा को संगठित और निरंतर निगरानी व्यवस्था की आवश्यकता होती है, ताकि उसे अन्य देशी भाषाओं के साथ पारस्परिक गतिविधियों सहित यह स्वयं को अद्यतन और स्तरीय बनाए रख सके।
5. यद्यपि सभी विषयों का विभन्न भारतीय भाषाओं में अध्ययन से राष्ट्रीय अखंडता और परस्पर अनुकूलता के मुद्दों को उठाया गया है, परंतु वास्तव में इन्हें आवश्यकता से कहीं अधिक तूल दी जाती है। भारतीय अंग्रेजी की शुरुआत से पहले शताब्दियों पर्यंत संस्कृत/देशी भाषों में परस्पर बातचीत और संवाद करते रहे हैं।

   एक सामान्य संस्कृत शब्दावली के उपयोग से विज्ञान संबंधी कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाएगा और इसी से भारतीय भाषाएँ अनुप्रेरित एवं समृद्ध होंगी। साथ ही स्थानीय भाषाओं की शब्दावली का मानकीकरण कर उन्हें संस्कृत में सम्मलित किया जाएगा।
6. उसी प्रकार औपचारिक रूप से भाषाओं में पार-परागण और मानकीकरण की व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता होगी। राष्ट्रीय स्तर पर शीर्ष निकाय की स्थापना की जाएगी, जो संस्कृत शब्दावली हेतु सामान्य तकनीकी शब्दों की रचना के कार्य का समन्वय करेगा। यह कार्य कठिन नहीं है, क्यों कि विज्ञान की लैटिन आधारित शब्दावली में लगभग संस्कृत के समकक्ष धातु शब्द हैं और संस्कृत व्याकरण में धातु अथवा मूल से सरलता से शब्दों की रचना की व्यवस्था है। इस निकाय अथवा परिषद् में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे, जो अपनी देशी भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत में भी अनिवार्य रूप से पारंगत होंगे। यह परिषद् अध्ययन योग्य विभिन्न क्षेत्रों व पक्षों को लेकर आयोजित होगी, जिसमें संबंधित विषय विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया जाएगा।

प्रथम पीढ़ी का प्रवेश

यह तो निश्चित है कि सभी में पहले से ही मातृभाषा के प्रति स्वाभाविक लगाव होता हैं। लोग अपने मित्रों व पारिवारिक सदस्यों के साथ परस्पर बातचीत

में प्राय: मातृ-भाषा का प्रयोग स्वाभाविकता, सहजता और आनंद के साथ करते हैं। अपनी भाषा के प्रति आकर्षण के फलस्वरूप वे लोकप्रिय संस्कृति और शास्त्रीय कलाओं का रस लेते हुए अपना मनोरंजन करते हैं। भारत में अंग्रेजी मीडिया की तुलना में विभिन्न भारतीय भाषाओं का मीडिया विभिन्न प्रकाशनों, समाचार-पत्रों और टीवी चैनलों एवं उनके पाठकों तथा दर्शकों की संख्या की दृष्टि से बहुत अधिक बड़ा है। परंतु उच्च शिक्षा और व्यवसायों में भारतीय भाषाओं के विस्तृत प्रयोग और उसकी स्वीकार्यता को बल नहीं मिला है।

इसलिए समूची शिक्षा प्रणाली में देशी भाषा की प्रवीणता को अनिवार्य बनाना आवश्यक है। यहाँ तक कि शिक्षा का प्राथमिक माध्यम अंग्रेजी रखनेवाली संस्थाओं में भी भारतीय भाषाओं के पठन की व्यवस्था हो। इससे यह सुनिश्चित होगा कि पूरी पीढ़ी के लोगों के पास व्यवसाय करने व विज्ञान की शिक्षा आदि अपनी प्राकृतिक भाषाओं में होने की संभावनाओं की वास्तविकता अनुभव कर सकेंगे। इससे लाभ मिलना स्वाभाविक है।

एक आकर्षक भाषा पाठ्यक्रम के माध्यम से विश्वविद्यालयों में युवाओं और स्कूलों में बच्चों पर इसे व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, कंप्यूटर साक्षरता के लिए एक अनुपालन दिशा-निर्देश जारी करने की आवश्यकता होगी, जिसमें क्षेत्रीय भाषा, संस्कृत और अंग्रेजी (या कोई अन्य विदेशी भाषा) को सम्मिलित कर एक संतुलित और विकल्प आधारित नियम भी हों।

देशी भाषाओं में कंप्यूटर साक्षरता

देशी भाषाओं में कंप्यूटर साक्षरता को अंग्रेजी के कंप्यूटर साक्षरता से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। बच्चे अंग्रेजी में कंप्यूटर सीखने की तुलना में देशी भाषाओं में उसे अधिक सरलता के साथ सीखेंगे।

1. स्कूल में भारतीय भाषाओं की लिपियों पर आधारित की-बोर्ड के द्वारा कंप्यूटर सिखाया जाना चाहिए। कंप्यूटर निर्माताओं को भारतीय लिपि के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए अनिवार्य रूप से की-बोर्ड पर भारतीय भाषा के अक्षर देने चाहिए। इससे भारतीय भाषाओं और कंप्यूटर के बीच मानसिक जड़ता को तोड़ने में सहायता मिलेगी।
2. इलेक्ट्रॉनिक्स, सेलफोन और कंप्यूटर के उपकरण निर्माताओं को

भारतीय भाषाओं में उपयोगकर्ता मैनुअल प्रदान करना अनिवार्य बनाना चाहिए।

3. आई.टी.आई. और अन्य व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों को भारतीय भाषाओं में अपने सॉफ्टवेयर पाठ्यक्रम उपलब्ध कराने चाहिए।
4. भारतीय भाषाओं का उपयोग करनेवाले तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों को टैक्स सब्सिडी मिलनी चाहिए।

देशी भाषा और संस्कृत में प्रवीणता

1. प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा अनिवार्य रूप से स्थानीय भाषा में दी जानी चाहिए :

(क) अंग्रेजी या संस्कृत या फिर अन्य कोई भाषा देशी भाषा के माध्यम वाले विद्यालयों में भले ही वैकल्पिक हो, परंतु अनिवार्य नहीं।

(ख) वर्तमान अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा प्राथमिक विद्यालय के स्तर से ही एक अनिवार्य विषय रहना चाहिए।

(ग) भारत भर में क्षेत्रीय भाषा-संस्कृत-अंग्रेजी का 'त्रिभाषा सूत्र' लागू होना चाहिए। विद्यालयों के मध्य अंतर मात्र इतना हो कि इन तीनों भाषाओं से संबंधित क्रम भिन्न हो।

2. माध्यमिक स्तर से ऊपर के विद्यालयों की डिग्रियों में स्थानीय भाषा अथवा संस्कृत में सामान्य प्रवीणता उल्लिखित होनी चाहिए :

(क) सामाजिक विज्ञान और विज्ञान के अध्ययन में स्थानीय भाषा या संस्कृत का प्रवाह प्रदर्शित हो, साथ ही यह प्रवाह भाषा अध्ययन के संदर्भ में भी प्रदर्शित होना चाहिए।

(ख) यदि प्रवाह मुख्य रूप से देशी भाषा में है तो संस्कृत में सामान्य बोल-चाल और व्याकरण कौशल को भी सम्मिलित करना चाहिए। यदि संस्कृत भाषा में प्रवीणता का स्तर 1, 2, 3 और 4 के साथ वर्गीकृत किया गया हो तो उच्च विद्यालय के स्नातकों के लिए संस्कृत में कम-से-कम स्तर-2 की दक्षता होनी चाहिए।

(ग) देशी भाषीय अथवा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों, सभी में संस्कृत तकनीकी शब्दावली एवं अंग्रेजी तकनीकी शब्दावली, दोनों साथ-साथ पढ़ाई जानी चाहिए।

3. उसी आधार पर सभी डिप्लोमा, स्नातक डिग्री, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट डिग्री में विषयवार अपनी स्वैच्छिक देशी भाषा की प्रवीणता प्रदर्शित हो। उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत प्रवीणता के नियंत्रण के बारे उल्लेख नीचे किया गया है।

वैज्ञानिक एवं समाज सांस्कृतिक अनुशासन

माध्यमिक विद्यालय के स्तर तक संस्कृत के मौलिक ज्ञानार्जन के पश्चात् उच्चतर शिक्षा में संस्कृत की प्रवीणता का प्रश्न आता है। समाज और संस्कृति में प्रचलित दो प्रकार के शब्द एवं संस्कृति के आधार पर हम इसे दो भागों में बाँट सकते हैं :

1. प्रथम भाग विज्ञान, मानव-विज्ञान, कला और दूसरे व्यवसायों की तकनीकी शब्दावली से संबंधित है।
2. जबकि दूसरा, उप-संस्कृतियों के बीच अभिव्यक्त किए जानेवाले विचार और वैयक्तिक अनुभवों, मनो-ऐतिहासिक स्मृति, अंक ज्ञान, समाज और राजनीतिक संबंध, लोक ज्ञान, क्रियाएँ, शब्द-व्युत्पत्ति और समास से संबंधित समूह के लिए शब्दावली।

शब्दावली उक्त दोनों वर्गों पर आधारित उच्चतर शिक्षा के लिए संस्कृत कौशल्य निम्न प्रकार से निर्देशित किया जा सकता है :

(क) व्यावसायिक शिक्षा की विशिष्ट तकनीकी के लिए संस्कृत को एक वैकल्पिक विषय के रूप में रखा जा सकता है। अभ्यर्थियों के लिए इतना पर्याप्त होगा कि उन्हें क्षेत्रीय भाषाओं में इन विषयों का अच्छा ज्ञान हो और उस क्षेत्रीय भाषा की शब्दावली संस्कृत आधारित ही होगी, ताकि भारत में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ अनुकूलता बनी रहे।

(ख) फिर भी, स्नातक स्तर से ऊपर की शिक्षा के लिए कानून, समाज विज्ञान, राजनीति शास्त्र, पत्रकारिता, इतिहास से संबंधित मानव विज्ञान के सभी विषयों हेतु संस्कृत की प्रवीणता में निरंतर सुधार अनिवार्य होगा।

समानांतर भाषा मार्ग—प्रवीणता की आवश्यकता और उसका महत्व

यहाँ तक कि अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के लिए भारतीय भाषा की

प्रवीणता अनिवार्य बनाकर, जनसंख्या का अंग्रेजी पद्धति से पढ़ा-लिखा अधिक शिक्षित वर्ग भारत भर में एक समान भाषा नीति को लागू करने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण हितधारकों के रूप में लाभ की स्थिति में ही रहेगा। अन्यथा समाज में वर्ग-भेद की स्थिति उत्पन्न होती है, जहाँ भारतीय भाषाओं के हितधारक अंग्रेजी माध्यम से शिक्षितों की तुलना में वंचित या घाटे की स्थिति में रहते हैं। यह एक स्वस्थ अथवा उपयुक्त मार्ग नहीं हो सकता। यही कारण है कि भारत की वर्तमान भाषा नीति विफल प्राय: है।

भारतीय भाषाओं के लिए सहायक व बेहतर रोमन लिपि का निर्माण करना

भारतीय देशी भाषाएँ वर्तमान में बिना मानकीकरण के अव्यवस्थित ढंग से रोमन (अंग्रेजी) में लिप्यंतरित की जाती हैं। यह गैर-स्तरीय दृष्टिकोण मोबाइल उपकरणों और अन्य कार्यक्रमों में टाइपिंग के दौरान देशी भाषाओं के उपयोग में वर्तनी की त्रुटियों के रूप में दिखता है। इसलिए हमें रोमन लिपि को भारतीय भाषाओं के लिए एक आधार प्रदान करने की दिशा में अग्रसर होना होगा और साथ ही भारत में अंग्रेजी को संस्कृत शब्दावली से समृद्ध बनाकर उसे भारतीयता के अनुरूप ढालना होगा। इस प्रकार अंग्रेजी को भारतीय भाषा बनाने की दिशा में यह एक आवश्यक कदम होगा।

संभावित आपत्तियाँ और उनका निराकरण

1. यह अत्यंत अव्यावहारिक है। उच्च शिक्षा में तकनीकी विषयों को भारतीय भाषाओं में पढ़ानेवाले अच्छे शिक्षक, प्राध्यापक व प्रोफेसर कहाँ मिलेंगे?

उत्तर—यह एक अंतर-पीढ़ीगत योजना है। भारत भर में सेटैलाइट के माध्यम से मुक्त पाठ्यक्रमों द्वारा कक्षाओं में प्रसारण किया जा सकता है। दूरस्थ शिक्षा के लिए मूल तकनीकी ढाँचे का प्रस्ताव पहले से ही है—और इस प्रणाली से देश में किसी भी क्षेत्र के स्कूल या कॉलेज में सबसे अच्छे शिक्षकों और प्रोफेसरों द्वारा पढ़ाया जा सकेगा। शिक्षा के ढाँचे में मौलिक परिवर्तन के अतिरिक्त मानव संसाधनों का समुचित उपयोग होगा। उदाहरणत: भारतीय भाषाओं के शिक्षकगण अनुवाद कार्य का दायित्व लेंगे और छात्रों द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नों के उत्तर देंगे। आवश्यक होने पर मूल शिक्षकों अथवा नेटवर्क

द्वारा उस विषय के विशेषज्ञों के माध्यम से ये शिक्षक कठिन प्रश्नों के उत्तरों की व्यवस्था करेंगे। इस प्रकार, विद्या के किसी भी क्षेत्र से अध्यापक व प्राध्यापक विद्या-वृक्ष की शाखा के रूप में कार्य करेंगे और स्थानीय छात्रों को पाठ्य-सामग्री का अनुवाद उपलब्ध कराएँगे।

यह केवल पीढ़ी अंतराल की समस्या है। यह संधि-काल पूर्ण हो जाने पर भारतीय भाषाओं में विज्ञान अध्ययन का देशीय वातावरण सुलभ हो जाएगा। जापान में भी विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का भारतीय भाषाओं से अनुवाद नहीं हुआ, बल्कि उन्हें स्थानीय जापानी वैज्ञानिकों ने मूल रूप से जापानी में लिखा है।

इसके अतिरिक्त इससे अपने आप स्थनीय देशी भाषाओं में विभिन्न विषयों पर पुस्तकों एवं अन्य मीडिया की माँग बढ़ेगी और स्वाभाविक है कि शिक्षक, प्राध्यापक गण और प्रकाशन उद्योग के विशेषज्ञ उस माँग की पूर्ति के लिए पुस्तक लेखन, वृत्तचित्र या अन्य मीडिया उपलब्ध कराने को बाध्य हो जाएँगे। बाजार की गतिशीलता ने चीन जैसे अन्य देशों में इस प्रवाह की सृष्टि की है। बाजार की इस गतिशीलता को सरकारी नीति से प्रोत्साहित भी किया जा सकता है।

भारतीय भाषा के मौजूदा प्लेटफॉर्म पर उच्च शिक्षा व्यवस्था में बदलाव एक ही झटके में नहीं किया जा सकता, बल्कि एक क्रमिक तौर पर लागू करने की प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए चिह्नित किया जाना चाहिए। हर मील के पत्थर में सभी हितधारकों-शिक्षाविदों, उद्योगपतियों, समाजशास्त्रियों, सरकार और कर्मचारियों से सक्रिय प्रतिक्रिया के आधार पर एक बार फिर से मूल्यांकन करने की आवश्यकता होगी। समय-निर्धारण के मामले में नीतिगत ढाँचे में निश्चित तौर पर एक अंतर पीढ़ीगत परिप्रेक्ष्य में रखना चाहिए।

□

भारत सरकार के प्रकाशन और संचार

केंद्र सरकार के प्रकाशनों, वेबसाइटों और पत्र-व्यवहार पर पहले से ही अंग्रेजी का आधिपत्य है और कभी-कभी तो विशेष रूप से अंग्रेजी का प्रयोग होता है। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में इसका एक बंधन की तरह का प्रभाव देखा गया है। डिजिटल डिवाइड को पाटने की दिशा में सरकार के प्रयासों के साथ-साथ सरकारी वेबसाइटों की सामग्री को सभी 22 भारतीय भाषाओं में अनिवार्य रूप से जारी करने के लिए कानूनी प्रावधान की आवश्यकता है।

ऐसा करना उतना कठिन नहीं है जितना यह लगता है। यूरोपीय संघ सभी सार्वजनिक संवाद और वेबसाइट सामग्री यूरोपीय संघ की सभी 24 भाषाओं में जारी करता है। कनाडा जैसे कई देशों में कानून द्वारा यह अनिवार्य किया गया है कि सरकार और कॉरपोरेट वेबसाइट अंग्रेजी और फ्रेंच, दोनों में साथ-साथ जारी करेगी। भारत में अनेकों सरकारी वेबसाइट सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध न होकर केवल अंग्रेजी में हैं। यद्यपि कुछेक वेबसाइट हिंदी में हैं, परंतु वहाँ अंग्रेजी शब्द रोमन से देवनागरी में मात्र लिप्यंतरित होते हैं। इसका कारण यह है कि हमारे पास संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली के निर्माण में निवेश की कमी है।

संवैधानिक निर्देश अधूरे हैं

संविधान में भाषा नीति को लेकर स्पष्ट दिशा-निर्देश है कि स्वतंत्रता के 15 वर्षों के भीतर भाषा-नीति लागू की जाए, परंतु उस संवैधानिक निर्देश का सम्मान नहीं किया गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में स्पष्ट है कि

देवनागरी लिपि में हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार किया गया है। यह बहुत ही घनिष्ठ कथ्य था, क्योंकि उस समय आधे सांसदों ने संस्कृत को राजभाषा बनाने के लिए अपना मत दिया था। हिंदी को अधिकृत रूप से लागू होने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में लागू करने की दृष्टि से गठित एक संसदीय समिति ने सभी सरकारी काम-काज के लिए इसे उत्तरोत्तर लागू करने और चरणबद्ध कार्यक्रम के साथ धीरे-धीरे अंग्रेजी को हटाने की सिफारिशें देनी थीं, परंतु संस्कृत के स्थान पर हिंदी के चयन के कारण यह एक राजनीतिक समस्या बन गई।

इसी तरह उसी अनुच्छेद 343 में यह भी उल्लेख है कि अंग्रेजी को चरणबद्ध कार्यक्रम द्वारा हटाने की 15 वर्ष की अवधि को संसद् द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इसका लाभ उठाकर न केवल अंग्रेजी के प्रयोग को अनिश्चितकाल के लिए बढ़ा दिया गया, बल्कि भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों में इसकी पैठ भी बढ़ी है।

वर्तमान में, 1963 के राजभाषा अधिनियम और 1976 के राजभाषा नियमों के अंतर्गत (रोचक तथ्य यह है कि ऐसा श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कुख्यात आपातकाल के समय उक्त अधिनियम में संशोधन कर इन नियमों को पारित किया गया था।) जारी दिशा-निर्देश और नियमों के अनुसार सरकारी कार्यालयों में विभिन्न सरकारी काम-काज व पत्र-व्यवहार के लिए अंग्रेजी को हिंदी के विकल्प के रूप में प्रयोग करने की अनुमति दे दी गई। वास्तव में, अंतरराज्य पत्राचार के लिए जिन राज्यों ने हिंदी को अपनी राजभाषा स्वीकार नहीं किया है, वहाँ हिंदी में पत्र की स्थिति में उसके साथ अंग्रेजी अनुवाद की प्रति भेजना अनिवार्य है। इसका अर्थ यह है कि इस अधिनियम ने न केवल हिंदी के साथ समानांतर अंग्रेजी के प्रयोग को बढ़ावा दिया है, बल्कि उसे वास्तव में हिंदी की कीमत पर एक अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में अपनाने को बाध्य भी किया है।

हिंदी या संस्कृत?

संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष, डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने आधुनिक भारत के संविधान को आकार दिया था। उन्होंने ही राष्ट्रीय भाषा के रूप में संस्कृत का दृढ़ता से समर्थन किया था। वस्तुतः वे आजीवन संस्कृत के प्रति

उत्साही रहे और सदन में संक्षेप में संस्कृत में बोलनेवाले वे प्रथम सांसद भी थे। संस्कृत आयोग की रिपोर्ट (1956-57) में भी यह तथ्य अंकित है कि संविधान सभा में चर्चा के दौरान राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के स्थान पर संस्कृत को प्रतिष्ठित करने के लिए तीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का समर्थन प्राप्त था।

1. डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने संस्कृत को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाने के पक्ष में प्रबल समर्थन किया था।
2. मुसलिम : श्री नजीरुद्दीन अहमद (पूर्व मुसलिम लीग) ने भी संस्कृत के लिए जोरदार अपील की।
3. दक्षिण भारत : कई तमिल सदस्य भी इसके पक्ष में थे।

शताब्दियों से संस्कृत भारत की बौद्धिक कार्यकलापों की भाषा थी। एक अनुमान के अनुसार आज भी संस्कृत में 3 करोड़ लिखित पांडुलिपियाँ हैं, जो किसी भी अन्य प्राचीन साहित्य की तुलना में एक बहुत बड़ी निधि है। संस्कृत न केवल भारतीय भाषाओं, बल्कि मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड और वियतनाम सहित वृहद भारतीय सभ्यता की रीढ़ है।

हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को समृद्ध बनाने, अंग्रेजी व अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के समकक्ष लाकर उन्हें प्रतिस्पर्धा योग्य तथा सक्षम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम इनके मुख्य आधार अर्थात् संस्कृत को प्रमुखता दी जाए। कानून में इस बात का प्रावधान करना होगा, जिससे एक व्यापक ढाँचा तैयार हो और जमीनी स्तर पर इस उद्देश्य के लिए प्रयासों से धीरे-धीरे जन-समर्थन निर्मित हो सके।

संशोधित नीति के दिशा-निर्देश

सभी भारतीय भाषाओं की शब्दावली संस्कृत से ओत-प्रोत है। इसका व्याकरण उनमें से अधिकांश भाषाओं को अनुप्राणित करता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत एक संपूर्ण, श्रेष्ठ एवं सार्थक भाषा है, जिसमें अर्थ को स्पष्ट करने की व्यापक क्षमता है। कंप्यूटर मशीन अनुवाद में अर्थ पाने के लिए प्राकृतिक मानव भाषाओं का अनुवाद एक मध्यस्थ के रूप में किया जाता है। हाल ही के शोध सुझाते हैं कि संस्कृत भाषा अपने आपमें बहुत सटीक और उपयुक्त अर्थ का प्रतिनिधित्व करने में अत्यंत अनुकूल है। स्वचालित अनुवाद मशीन के द्वारा संस्कृत से किसी अन्य भारतीय भाषा में अनुवाद बहुत सटीक, युक्तियुक्त और

उच्चस्तरीय सार्थकता के साथ किया जा सकता है। परंतु इस प्रकार की सटीकता के साथ अंग्रेजी पाठ के मूल स्रोत का अनुवाद करना वर्तमान में संभव नहीं है।

उदाहरण के लिए, यदि कानून को मूल रूप में संस्कृत में निर्दिष्ट किया जाता है तो उसके अर्थ का बोध व सार पूर्णता के साथ उसमें समाहित हो सकता है और अन्य सभी भाषाओं में तत्काल मशीनीकृत अनुवाद भी संभव हो जाएगा—

1. संस्कृत की अतिरिक्त प्रति के साथ वर्तमान कानून बना रह सकता है। भारत सरकार का संपूर्ण पत्र-व्यवहार संस्कृतनिष्ठ हिंदी के साथ अतिरिक्त रूप से संस्कृत की प्रतिलिपि के साथ भेजा जाना चाहिए। संस्कृत संस्करण को ही अधिकृत माना जाए और फिर अतिरिक्त रूप से उसका अंग्रेजी अनुवाद जारी किया जा सकता है।
2. समस्त पत्राचार सभी सरकारी वेबसाइटों पर मशीनीकृत अनुवाद की व्यक्तिगत जाँच उपरांत उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जिससे उसे सब भारतीय भाषाओं में एक साथ पहुँचाया जा सके।
3. भारत सरकार के समस्त प्रकाशन और राजभाषा नियमों में वर्णित पत्र-व्यवहार व संवाद की संस्कृत प्रति लिखित अथवा सभी भारतीय भाषाओं के वर्ल्डवाइड वेब अर्थात् नेटवर्क पर उपलब्ध होनी चाहिए।
4. एक समय-सीमा, मानो 15 वर्ष निर्धारित होनी चाहिए, जिसके अंदर अंग्रेजी की मूल प्रतियों को चरणबद्ध क्रम में समाप्त अथवा निर्मूल कर देना चाहिए। संस्कृत को प्रमुख प्रशासनिक भाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से इसी प्रकार हिंदी प्रतियों को भी धीरे-धीरे समाप्त किया जा सकता है।
5. किसी भी स्थिति में निर्धारित अवधि में पुनः विस्तार की अनुमति न दी जाए।

पहले की तुलना में अब बहुत आसान

यह तो मानना पड़ेगा कि ऐसे अधिनियमों के परिणाम आज उतने निश्चित नहीं हो सकते, जितना 60 वर्ष पूर्व लग रहा था। आज किसी भाषा में इलेक्ट्रॉनिक संवाद मात्र एक बटन दबाने भर से दूसरी भाषा में अनूदित किया जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत का इलेक्ट्रॉनिक संवाद अन्य देशी भाषाओं में सटीक अनुवाद

एक बटन के क्लिक के साथ किया जा सकता है और अंग्रेजी अनुवाद की गुणवत्ता में भी धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

संस्कृत और भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी समर्थन बढ़ने से इनकी माँग भी बढ़ेगी और उन्हें सौ से अधिक अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के लिए प्रदान की गई सहायता के स्तर पर ला देगी।

संभवत: ऐसा प्रतीत हो कि संस्कृत की वापसी कठिन है, परंतु शताब्दी पूर्व की हिब्रू भाषा की तुलना में संस्कृत आज कहीं अधिक सजीव है। फिर भी हिब्रू आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी और उच्च शिक्षा में पूर्णतया कार्यशील एवं समकालीन भाषा के रूप में बढ़ रही है। (इजराइल पर केस स्टडी देखें)

राज्य सरकार प्रकाशन

कनाडा में क्यूबेक राज्य के मामले पर विचार करें। राष्ट्रीय स्तर पर कनाडा अंग्रेजी भाषी बहुसंख्यक राष्ट्र है, जिसमें केवल क्यूबेक उसका फ्रेंच भाषी प्रांत है। फिर भी वहाँ के कानून के अनुसार यह अनिवार्य है कि कनाडा के किसी भी राज्य में सरकारी वेबसाइट द्विभाषी होनी चाहिए—अंग्रेजी और फ्रेंच में। यदि किसी सरकारी वेबसाइट पर फ्रेंच की प्रति उपलब्ध नहीं है तो उसे अवैध माना जाता है।

भारत में अब भी केंद्रीय अथवा राज्य सरकार की वेबसाइट केवल अंग्रेजी में होना अवैध नहीं है और वह भी तब जबकि अंग्रेजी बहुसंख्यक लोगों की भाषा नहीं है।

भारत में स्थिति यह है कि राज्य सरकारें अपनी राजभाषा को छोड़, परिपत्र, विज्ञप्तियाँ व अन्यान्य सामग्री मात्र अंग्रेजी में ही प्रकाशित करती हैं।

कानून द्वारा यह अनिवार्य होना चाहिए कि सभी सरकारी प्रकाशन संबंधित राज्य की राजभाषा और संस्कृत में हों। पिछले अध्याय में दी गई केंद्र सरकार के लिए अपनाई जानेवाली नीति के अनुसरण में राज्य प्रकाशनों, वेबसाइटों और संवाद आदि को भी तदनुरूप ढाला जा सकता है। पत्र अथवा इलेक्ट्रॉनिक किसी भी रूप में राज्य सरकार के सभी संवाद व विज्ञप्तियाँ प्रथमत: उस राज्य की राजभाषा एवं संस्कृत की प्रति के साथ होनी चाहिए। अंग्रेजी को विकल्प के रूप में रखा जा सकता है।

संभावित आपत्तियाँ और उनका निराकरण

1. संस्कृत सहित राष्ट्रीय भाषा को लेकर राजनीतिक स्तर पर आपत्तियाँ उठाई जाएँगी। अंग्रेजी के साथ समझौता करना पड़ रहा है?

उत्तर—क्षेत्र-निरपेक्ष भाषा के रूप में भारत भर में संस्कृत की व्यापक स्वीकार्यता है। जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह बात स्वयं संविधान सभा में भी उभरकर सामने आई थी। 'हाँ' के लिए (आम) शब्द सहित, तमिल भाषा में भी 42 प्रतिशत से अधिक शब्द संस्कृत मूल के हैं। संस्कृत के साथ गहरे जैविक संबंध वाली अधिकांश भारतीय भाषाओं के लिए यह बात सही है।

दूसरा, कोई विशेष क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ के लोगों को संस्कृत सीखने में महत्त्वपूर्ण लाभ नहीं है। तथाकथित 'उत्तर-दक्षिण का भेद' भी संस्कृत के लिए लागू नहीं होता। कुछ भी हो, अरबी या पारसी शब्दों से प्रभावित हिंदी या पंजाबी की तुलना में अधिकांश दक्षिणी भाषाओं में व्यापक संस्कृत शब्दावली है।

तीसरा, संस्कृत सदैव सभी क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को समाहित व संशोधित करती रही है; क्योंकि यह प्रक्रिया जारी रहेगी, इसलिए क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका ग्रहणकर्ता के साथ-साथ दाता की भी होगी।

2. कुछ राजनीतिक शक्तियाँ संस्कृत लागू करने को तथाकथित निचली जातियों पर सवर्ण जातियों के प्रभुत्व के रूप में देखती हैं? इसलिए उदाहरण के तौर पर भारत का दलित वर्ग इस प्रस्ताव को नकार देगा।

उत्तर—जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, डॉ. आंबेडकर स्वयं संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में लागू किए जाने के पक्ष में सशक्त वकालत करते रहे थे। क्या भारत के दलितों के लिए उनसे अधिक विशिष्ट और अच्छी तरह सोची-समझी आवाज एवं दूरदृष्टि कोई हो सकती है? इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इतिहास में संस्कृत साहित्य की महान् कृतियों में से कुछ तो तथाकथित 'नीची जाति' द्वारा ही संकलित की गई हैं। तार्किक आधार पर संस्कृत को किसी भी जाति से जोड़ा नहीं जा सकता।

दूसरा, यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो तथाकथित 'सवर्ण जाति के लोगों को निचली जाति के अपने भाइयों की तुलना में आज भी संस्कृत भाषा सीखने की लाभप्रद स्थिति में नहीं पाते; बल्कि उक्त दोनों वर्ग कहाँ से आते हैं,

इस बात पर विचार करें तो हम यह पाएँगे कि दोनों ही अंग्रेजी सीखने के लिए कहीं अधिक घाटे की स्थिति में होंगे।

केंद्र सरकार के प्रकाशनों, वेबसाइटों और संचार पर पहले से ही अंग्रेजी का प्रभाव है और कभी-कभी अंग्रेजी का विशेष तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इससे भारत के अधिकांश हिस्सों में गैर-मुक्त होने जैसा असर देखा गया है। डिजिटल डिवाइड को पाटने की दिशा में सरकार की पहल के साथ-साथ सरकारी वेबसाइट की सामग्रियों को सभी 22 भारतीय भाषाओं में अनिवार्य रूप से रिलीज करने के लिए कानून बनाने की जरूरत है।

ऐसा करना मुश्किल नहीं है। यूरोपीय संघ सभी सार्वजनिक संचार और वेबसाइटों को यूरोपीय संघ की 24 भाषाओं में जारी करता है। कई देशों में, मसलन कनाडा जैसे देश में कानून द्वारा अनिवार्य किया गया है कि सरकार और कॉरपोरेट वेबसाइट अंग्रेजी तथा फ्रेंच में रिलीज करनी हैं। हालाँकि भारत में, कई सरकारी वेबसाइट केवल अंग्रेजी में हैं और सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ तक कि वेबसाइट हिंदी में उपलब्ध हैं, वे अंग्रेजी के स्क्रिप्ट को देवनागरी में अनुवाद कर रही हैं। कारण यह है कि हमारे पास संस्कृत आधारित तकनीकी शब्दावली के निर्माण में निवेश की कमी है।

□

निजी क्षेत्र हेतु नीतिगत सुझाव

जब बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यूरोप में अपना सामान बेचती हैं तो वे भारतीय प्रदेशों से भी कहीं छोटे यूरोप के देशों और क्षेत्रों की अपनी-अपनी भाषा के अनुसार उस सामान पर लेबल लगाती हैं। जब मैं स्पेन के बार्सिलोना नगर में गया तो पाया कि वहाँ पर कतलान भाषा का प्रयोग होता है। वहाँ पर कानूनी तौर से कतलान भाषा का प्रयोग अनिवार्य है। देश-देश में अपनी भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए ऐसे कानून लागू हैं। सुरक्षा, सुविधा और संस्कृति तीनों कारणों से सामान पर लेबल जनभाषा में होना ही उपयुक्त है। सुरक्षा और सामान्य सूझ-बूझ की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि उत्पाद के ऊपर लगनेवाले लेबल उन उत्पाद के उपभोक्ताओं की सुविधा और सहजता के लिए उनकी भाषा में ही हों।

उपभोक्ता सामग्री और लेबल

चीन ने हाल ही में 'वॉलमार्ट' कंपनी को दंडित किया। कंपनी का अपराध यह था कि वह जो उत्पाद बेच रही थी, उनपर चीनी भाषा में लिखे अक्षर अंग्रेजी भाषा की तुलना में छोटे आकार के थे।

भारत में आज हम देखते हैं कि गैर-अंग्रेजी भाषी उपभोक्ताओं की बहुत बड़ी संख्या की उपेक्षा करते हुए यहाँ नियम के अभाव में किसी भी उत्पाद पर अनियमित रूप से अंग्रेजी में ही लेबलिंग होती है। इसका रक्षा और ऊँच-नीच की भावना की संस्कृति, जिसमें अंग्रेजी को ऊँचा माना जाता है, पर प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में नियम ये होने चाहिए—

1. सभी उत्पादों पर लेबलिंग राज्य की भाषा में ही होनी चाहिए और

यदि अंग्रेजी अक्षरों का प्रयोग करना भी हो तो स्थानीय भाषा के अक्षर आकार और महत्त्व में अंग्रेजी से कम न हों।

2. सरकारी अथवा निगम (कॉरपोरेट) क्षेत्र के सभी सार्वजनिक बोर्ड आदि एक समान नियमों का पालन करें।
3. फिल्म निर्माता सेंसर बोर्ड द्वारा पारित नियमों का समान रूप से पालन करें। भारतीय भाषाओं की फिल्मों में अंग्रेजी के उपयोग की स्थिति में उसके जारी होनेवाले स्थानीय क्षेत्रों की भाषाओं में उनके उपशीर्षक दिए जाने चाहिए।
4. 'कोक' जैसे ब्रांड नाम, जो एक लोगो का हिस्सा हों, आदि को छोड़कर, सभी उत्पाद लेबलों को भारतीय भाषा नियम का पालन करना आवश्यक होना चाहिए।
5. खुदरा व्यवसाय जैसी दुकानों में इस तरह के बहुभाषी सूचक/संकेत बोर्डों में बदलाव के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, ताकि उन्हें अधिक खर्चा वहन न करना पड़े।

निजी क्षेत्र में देशी भाषाओं का अनुपालन

राज्य की राजभाषा को अन्य वैकल्पिक भाषा के साथ-साथ निम्नलिखित क्षेत्रों में वैधिक रूप से आवश्यक होना चाहिए—

1. भाषाई सेवाएँ (जनसुविधा के लिए जिस भाषाई माध्यम का उपयोग हो, वह मुख्य रूप से देशी भाषा ही हो)।
2. वाणिज्यिक करार के लिए (देशी भाषा की आवश्यकता)।
3. श्रम संबंधों और व्यापार की भाषा (राज्य के साथ सौदा तय करने के लिए इच्छुक व्यवसायियों को देशी भाषाओं को लागू करने संबंधी कार्यक्रमों के लिए आवेदन करना चाहिए)।
4. भाषाई माध्यम की दृष्टि निर्देश की भाषा (प्राथमिक स्तर पर देशी भाषा का शिक्षण अनिवार्य होना चाहिए, चाहे वह अंग्रेजी माध्यम का विद्यालय हो या कोई अन्य। अंग्रेजी माध्यम को हतोत्साहित किया जाना चाहिए और प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा पर कर लगना चाहिए)।

   (बच्चों को अपनी भाषा में दी जानेवाली शिक्षा और वैज्ञानिक

अनुसंधान का समर्थन करना चाहिए। वहीं अंग्रेजी को दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में पढ़ाना चाहिए।)

5. कानून द्वारा कंपनियों को राज्य की मूल भाषा बोलनेवालों के विरुद्ध भेदभाव करने की स्थिति में नहीं होना चाहिए। भाषा विशेष की नौकरी के अतिरिक्त उम्मीदवारों को अनुमति भले ही दी जा सकती है, पर उनके लिए राज्य की भाषा में साक्षात्कार देना आवश्यक नहीं होना चाहिए।
6. कानून और न्याय की भाषा (अस्पष्टता की स्थिति में भारतीय भाषा के मूल पाठ को प्राथमिकता दी जानी चाहिए)।

जैसाकि पहले व्यवस्था होती थी, बाजार के 'स्थानीयकरण' हेतु मानदंडों को परिभाषित करने के उद्देश्य से सार्वजनिक जीवन के विभन्न क्षेत्रों में प्रांतीय भाषा को विस्तारित किया जाना चाहिए। समूचे भारतीय संघ, स्थानीय एवं राष्ट्रीय मार्किट तथा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय मार्किट के बीच पारस्परिक वार्त्तालाप में सुविधा के दृष्टिगत संस्कृत को द्वितीय भाषा का स्थान लेना चाहिए और उसे इस दृष्टि से प्रोन्नत किया जाना चाहिए।

'शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत की प्रविष्टि' संबंधी अनुभाग को भी देखें। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि संस्कृत द्वारा प्रांतीय भाषाओं को समृद्ध बनाकर उन्हें अंतरराष्ट्रीय बाजार के साथ उनके संबंधों को सशक्त बनाया जा सके।

स्थानीय जनसांख्यिकीय के भीतर संस्कृत की भूमिका पूरी तरह से पैठ बनाकर, होड़ में न रहते हुए एक ऐसे मंच अथवा वातावरण को उपलब्ध कराने की होगी, जिसमें स्थानीय भाषाएँ प्रफुल्लित हो सकें। उस प्रकार की सेवा भूमिका में इसे केवल राज्य सरकारों द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए। भारतीय देशी भाषाएँ और संस्कृत परस्पर समृद्ध बनने तथा बनाने में योगदान करती हैं। उनमें परस्पर न केवल प्रक्रियात्मक संबंध हैं और इस प्रकार न केवल वे एक-दूसरे को समृद्ध करती हैं, बल्कि दोनों अलग-अलग तरह से समानांतर रूप से सभ्यता के बौद्धिक विकास में योगदान करती हैं।

संभावित आपत्तियाँ और उनके जवाब

प्रश्न—कंपनियों को विभिन्न भाषाओं में अपने उत्पाद का स्थानीयकरण करने के लिए उन्हें अत्यधिक अतिरिक्त बोझ वहन करना पड़ेगा?

उत्तर—विश्व भर में निगमित सर्वोत्कृष्ट आचरण संहिता के अंतर्गत कंपनियाँ पहले से ही विभिन्न भाषाओं में अपने उत्पाद का स्थानीयकरण करती हैं (कृपया परिशिष्ट I देखें, बहुभाषी करण हेतु तकनीकी समर्थन) और अपने विभिन्न उत्पाद भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में जारी करने में भली-भाँति सक्षम हैं।

दूसरा, यह तकनीक पहले से उपलब्ध है, जो इस देशी भाषाईकरण के कार्य पर नगण्यमात्र अतिरिक्त बोझ डालती है। वस्तुत: कंपनियों की इस प्रकार की पहल पर उन्हें अपनी मार्केट को और फैलाने का लाभ मिलेगा।

तीसरा, भारत के अनेक नगरों में यह प्रक्रिया पहले से ही स्थानीय भाषाओं के चल रही है। उदाहरण के लिए, हैदराबाद एवं पंजाब में अनेक नगरों में सभी दुकानों और व्यावसायिक उद्यमों के लिए स्थानीय भाषा में अपने नामपट प्रदर्शित करना अनिवार्य है। परंतु इसे व्यापक स्तर पर गंभीरता के साथ लागू किए जाने की आवश्यकता है।

अंत में इस पुस्तक के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं के लिए हमारा उद्देश्य एक सामान्य लिपि के विकल्पों को ढूँढ़ना/तलाशना भी है। इससे विभिन्न क्षेत्रीय बाजारों में अनुपालन की जटिलता बड़े पैमाने पर कम हो जाएगी।

प्रश्न—इंटरनेट आधारित बिक्री के बारे में क्या होना चाहिए?

उत्तर—इ-व्यापार करनेवाली कंपनियाँ अपने उपभोक्ताओं को विकल्प दे सकती हैं या राष्ट्रीय भाषा में स्वत: लेबलिंग की व्यवस्था रख सकती हैं। इससे भी स्थानीय भाषा आधारित इ-कॉमर्स पोर्टल्स के निर्माण में प्रोत्साहन मिलेगा।

□

लिपि-एकीकरण

लिपियाँ भी समय, स्थान, तकनीक और राजनीति में परिवर्तन के साथ-साथ बदलती हैं। अर्थशास्त्र, शिक्षा और राजनीति का भी इसपर प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक, सांस्कृतिक और तकनीकी कारणों से समय-समय पर भारतीय लिपियाँ विकसित हुईं। प्राचीन ब्राह्मी लिपि तमिल और देवनागरी सहित कई भारतीय लिपियों का आधार बनी। मराठी भाषा के लिए पहले 'मोड़ी लिपि' का प्रयोग होता था और 20वीं शताब्दी में उसे परिवर्तित किया गया।

लिप्यंतरण हेतु प्रयुक्त होनेवाली तकनीक के आधार पर भी लिपियाँ विकसित हुई हैं। दक्षिणी भाषाओं के लिप्यंतरण के लिए ताड़ के पत्तों के प्रयोग से गोलाकार लिपियाँ विकसित हुईं। खजूर के पत्तों पर सीधी रेखाओं के अनुरेखण से उनके फट जाने की संभावना रहती थी। अत: उन पत्तों पर गोलाकार व घुमावदार शैली में लिखने की परंपरा विकसित हुई।

लिपियाँ और भाषाएँ दोनों पृथक् चीजें हैं। किसी भी भाषा को कई भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखा जा सकता है। भारत में राजनीतिक और सांस्कृतिक एकीकरण की दृष्टि से अखिल भारतीय स्तर पर एक लिपि को मानक लिपि बनाने के लिए यह उपयुक्त समय है।

भारत में लिपियों का महत्त्व

व्यावहारिक दृष्टि से भारत में लिपियों के मानकीकरण के दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अत्यधिक भाषाई विविधतावाले देश चीन में भी वहाँ की सभी भाषाओं को एक समान चित्रात्मक लिपि 'हान'

में पिरो दिया गया, जो सहस्राब्दियों से वहाँ की पहचान है। (चीन पर केस स्टडी के लिए परिशिष्ट देखें)। चीन में दर्जनों ऐसी भाषाएँ हैं, जो परस्पर दुर्बोध्य अर्थात् एक-दूसरे को समझ में न आने योग्य हैं, पर सभी एक सामान्य चित्रलेखन प्रणाली वाली लिपि से सदियों से जुड़ी हुई हैं।

भारतीय भाषाएँ कई भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं। लिपियों के बीच भिन्नता के कारण ही एक-दूसरे की पठनीयता कठिन हो जाती है। लैटिन लिपि, (रोमन), जिसमें अंग्रेजी लिखी जाती है, की तुलना में भारतीय लिपियों में पर्याप्त समानता है। वहीं चीनी भाषा लिखने के लिए बड़ी संख्या में चीनी/कांजी के संयुक्त अक्षरों के समूह का प्रयोग होता है। यहाँ सभी भारतीय भाषाओं की लिपियों में एक अंतर्निहित एकता है। मतभेद तो कृत्रिम हैं।

सभी भारतीय लिपियाँ (तिब्बती-बर्मी और अन्य पड़ोसी लिपियाँ) मुख्यतया पाणिनि की संस्कृत व्याकरण में निर्दिष्ट वर्णमाला पर ही आधारित हैं। यह गणितीय व्युत्पन्न वर्णमाला शरीर रचना विज्ञान पर आधारित है। उदाहरण के लिए क वर्ग (क से ङ) की ध्वनि कंठ से उत्पन्न होती है, अतः क-वर्ग के व्यंजनों को 'कंठ्व्य' कहते हैं। च-वर्ग (च से ञ) की ध्वनि तालु के स्पर्श से होने से 'तालव्य', इसी प्रकार क्रमशः ट-वर्ग (ट से ण) मूर्धन्य, त-वर्ग (त से न) दंतव्य और प-वर्ग (प से म) ध्वनियों का समूह, जो होंठों के स्पर्श से उत्पन्न होने से 'ओष्ठव्य' आदि हैं। इतना ही नहीं, वर्णमाला का प्रत्येक क्रमिक व्यंजन भी व्यवस्थित पद्धति पर अपने पूर्व व्यंजन से लिया गया है। उदाहरण के लिए ख, क की महाप्राण ध्वनि का उच्चारण है। इसी प्रकार 'फ' की ध्वनि 'प' से आई है आदि-आदि। रोमन लिपि में अक्षरों के आकस्मिक क्रम और चीनी भाषा की चित्रलिपि के लेखन प्रणाली पर आधारित होने के विपरीत भारतीय लिपियाँ वैज्ञानिक, सुरुचिपूर्ण, सुसंगत और ध्वन्यात्मक हैं। तमिल सहित सभी भारतीय लिपियाँ पाणिनि के मूलभूत नियमों का अनुसरण करती हैं।

एक सामान्य लिपि की व्यवहार्यता और आवश्यकता

अखिल भारतीय स्तर पर एक सामान्य लिपि के अनेक लाभ हैं—

1. विभिन्न मार्गों और स्थानों के नामों को इंगित करनेवाले संकेतक और सूचना-पट आदि एक लिपि में होने से भारत भर में कहीं भी

यात्रा के लिए सहजता और सुगमता के साथ संभव हो जाएगी।

2. भारतीयों के लिए अनेकों भारतीय भाषाएँ सीखने में आनेवाली बाधाओं को कम किया जा सकेगा। भारतीय भाषाओं में पर्याप्त समानता है और संस्कृत आधारित एक सामान्य शब्दावली है। सभी भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि होने से इन भाषाओं के अध्ययन का स्तर बढ़ाना सरल होगा और लोगों को अलग-अलग क्षेत्रों का साहित्य पढ़ने में भी सहजता की अनुभूति होगी।
3. इससे कम बोली जानेवाली भारतीय भाषाओं के साहित्य के लिए भी माँग बढ़ेगी। फिर क्या यह एक सुखद आश्चर्य नहीं होगा, यदि अपेक्षित प्रशिक्षण उपरांत भारतवर्ष के लोग तमिल में ही तिरुवल्लुवर की मौलिक रचनाओं का आनंद ले सकें और समकालीन भारतीय परस्पर एक-दूसरे को उनकी भाषाओं में पढ़ व समझ सकें?

भारत के कुछ विशेष क्षेत्रों में विशुद्ध रूप से कार्यात्मक अवसरवादिता के आधार पर एक विशेष लिपि को अवश्य लागू किया गया। उदाहरण के लिए, गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र से कुछ लोग स्थानांतरित होकर शताब्दियों से तमिलनाडु में स्थायी रूप से बस गए, उन भाषाई अल्पसंख्यक लोगों ने अपनी ही भाषा को लिखने के लिए तमिल लिपि का प्रयोग करना आरंभ किया। आधुनिक काल से पूर्व इस प्रकार का व्यावहारिक प्रयोग भारत के विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित था। आज वही कारण पूरे भारतवर्ष में भारी संख्या में प्रवासी कर्मचारियों और एकीकृत शिक्षा प्रणाली के कारण लागू होता है।

राष्ट्र के किसी क्षेत्र विशेष में प्रशासनिक और राजनीतिक कारणों से एकरूपता बनाए रखने के उद्देश्य से भी एक सामान्य लिपि को अपनाने की आवश्यकता रहती है। सन् 1950 के पश्चात् मराठी भाषियों द्वारा देवनागरी लिपि अपनाने का एक अच्छा उदाहरण सामने है। उससे पूर्व, मराठी के लिए मोदी लिपि का प्रयोग किया जाता था। इसलामिक काल से पूर्व सिंधी और मारवाड़ी भाषाओं के लिए भी मोदी लिपि का प्रयोग होता था।

कंप्यूटरीकृत कैरेक्टर की एंकोडिंग के माध्यम से आज मात्र की-बोर्ड/कुंजी-पटल के एक बटन भर दबाने से यह संभव है कि वर्णमाला आधारित किसी एक अथवा सभी लिपियों में लिप्यंतरण संभव है। इस प्रणाली के व्यवस्थित होने पर एक से दूसरी लिपि में परिवर्तित करने के लिए केवल एक निश्चित

संख्यात्मक शिफ्ट करना होगा, और ऐसा कुछ वैसे ही होगा, जैसा हम व्यावहारिक रूप में प्राय: अंग्रेजी वर्ण सेट में फॉण्ट बदलने के लिए करते हैं। यह चीनी या जापानी लेखन प्रणालियों के कंप्यूटरीकृत एंकोडिंग करने से बहुत भिन्न और कठिन है।

संशोधित रोमन वर्णमाला को एक सामान्य लिपि रूप में अपनाना साधारण सी बात है। (जैसे वियतनाम, मलेशिया और इंडोनेशिया जैसे कुछेक देशों ने किया है) परंतु भारत के लिए इसे अपनाना उपयुक्त व अनुकूल नहीं है; क्योंकि रोमन लिपि भारतीय भाषाओं की वर्णमाला तथा वैचारिक ढाँचे के अनुकूल नहीं है। शास्त्रोक्त वृहद भारतीय सभ्यता के अंतर्गत आनेवाली भाषाओं और उनकी वैचारिक अवधारणा से भी इसका मेल नहीं बैठता।

वहीं भाषा के भारतीय स्वरूप और उसके प्रतिनिधित्व में दूसरों की तुलना में गणितीय और मनोध्वनिक गुण हैं, जो उक्त तर्क की पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय मामलों में एक विशिष्ट भू-राजनीतिक ध्रुव के रूप में भारत की स्थिति के दृष्टिगत अपनी पाणिनि आधारित विशिष्ट लिपि बनाए रखना और भी महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर तब, जबकि विश्व की अन्य लिपियों की तुलना में कहीं अधिक वैज्ञानिक है। इसके अतिरिक्त, विश्व में सभ्यता के केंद्र के रूप में भारत की भूमिका से श्रेष्ठत्व का संरक्षण इसका सांस्कृतिक दायित्व है। इस प्रकार मानवता और विविधता के विकास में यह भारत का योगदान ही होगा।

स्थानीय बने रहने की योग्यता और राष्ट्रीयकरण के बीच के अंतर को आज क्षेत्रीय भाषा के संकेतकों के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के संकेतकों द्वारा पूरा करने का प्रयास दिखता है और जहाँ देवनागरी का प्रयोग नहीं किया जाता, वहाँ संकेतक तीन भाषाओं में रहते हैं। इसमें बहुत अपव्यय होता है। इससे स्थान और एकरूपता विकृत होती है।

सामान्य लिपि के होने से केवल एक परंपरागत अस्थायी असुविधा होगी। देश भर में लंबे समय से उपयोग की जा रही अन्य कई लिपियों के साथ विभिन्न कारणों से क्षेत्रीय भावनाएँ जुड़ी हैं। तथापि, जैसाकि पिछले अनुभाग में उल्लेख किया गया है, भारतीय लिपियों का डिजिटलीकरण और तकनीक से असाधारण मेल होने के कारण वास्तव में इससे हानि होनेवाली नहीं है। सांस्कृतिक या धार्मिक क्षेत्रों में क्षेत्रीय लिपियों का उपयोग जारी रखा जा

सकता है। सार्वजनिक स्थानों पर एक सामान्य लिपि का प्रयोग ही हमारा मुख्य उद्देश्य है।

जहाँ तक उक्त अस्थायी असुविधा की बात है, तो एक 'ब्राउजर टूलबार' के निशुल्क डाउनलोड से तत्काल एक लिपि से अन्य लिपियों में लिप्यंतरण किया जा सकता है। यह एक तात्कालिक उपाय होगा, जो किसी प्रकार के प्रतिरोध को निर्मूल कर देगा।

सामान्य लिपि के विकल्प

सामान्य लिपि के मुख्य रूप से तीन विकल्प हैं, जो निम्न प्रकार से हैं—

विस्तृत देवनागरी

संख्या की दृष्टि से अधिकांश भारतीय देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। हिंदी और मराठी भाषाओं द्वारा मुख्य रूप से इसका प्रयोग करने के अतिरिक्त कश्मीरी, सिंधी, नेपाली, मैथिली और आधुनिक संस्कृत ने भी इसे अपनाया है। उत्तरी राज्यों में से कुछ में हिंदी का विस्तार हुआ है। अपनी लोकप्रिय संस्कृति के माध्यम से यह भाषा देशभर में व्याप्त हो गई है। यहाँ तक कि तमिलनाडु जैसे राज्यों में, जहाँ हिंदी प्रायः बहुत कम बोली जाती है, वहाँ कन्याकुमारी जैसे स्थानों में भी देवनागरी लिपि देखने को मिलती है। गोवा में कोंकणी भी देवनागरी में लिखी जाती है।

स्पष्ट है कि यह लिपि बहुत अधिक प्रयोग होती है और संस्कृत भाषा भी इस लिपि का प्रयोग काफी समय से करती आ रही है। अतः केंद्र द्वारा मान्यता प्राप्त सभी भाषाओं के लिए सामान्य लिपि के रूप में विस्तृत देवनागरी को अपनाना एक आसान विकल्प होगा।

अधिकांश भारतीय लिपियों में देवनागरी वर्णों का प्रतिरूप है। अपवादस्वरूप तमिल और अन्य भाषाओं की कुछ विशिष्ट ध्वनियों को देवनागरी अक्षरों में अतिरिक्त रूप से जोड़ा जा सकता है। अरबी और फारसी मूल के शब्दों को लिखने के लिए देवनागरी में पहले से ही नुक्ता के प्रयोग का प्रावधान है। इसी प्रकार, 'देवनागरी ++' अर्थात् विस्तृत देवनागरी लिपि के निर्माण से भारतीय उपमहाद्वीप की अतिरक्त ध्वनियों को समाहित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से देवनागरी लिपि उत्तरी और दक्षिणी लिपियों के साथ जुड़ी है। राजनीतिक स्तर पर उत्तर में इस लिपि के फिर से उभरने से पूर्व एक अवधि तक इसे दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य में ही आश्रय प्राप्त था।

प्राचीन भारतीय लिपि (वर्तमान में उपयोग में नहीं है)

एक तर्क यह हो सकता है कि भारत में अधिक सांस्कृतिक महत्त्व की कुछ पुरानी लिपियाँ भी हैं, जो वर्तमान में प्रयोग में नहीं हैं, परंतु इससे सभ्यता की उपलब्धि प्रतिबिंबित होती है। संभावना यह भी है कि विस्तृत देवनागरी के प्रयोग से राजनीतिक विरोध उत्पन्न हो। उस स्थिति में, राष्ट्रीय स्तर पर पुरानी लिपियों के विद्वानों की सीधी परिचर्चा कराई जा सकती है, ताकि पुरानी और कालातीत लिपियों को विकसित किया जा सके और वर्तमान के लिए एक सामान्य लिपि पर सहमति बनाई जा सके।

भारतीय समाज में पुरानी लिपियों को संशोधित रूप में प्रयोग कर उन्हें पुनर्जीवित करने की नियमित प्रथा रही है। सिख गुरुओं द्वारा प्राचीन 'शारदा लिपि' से गुरुमुखी लिपि निर्माण करने का उदाहरण हमारे सामने है।

भारत में, सिद्धं, रंजना, शारदा एवं अन्य ब्राह्मिक आदि पुरानी लिपियों की विविधता रही है। नेपाल में भी अपने सांस्कृतिक जुड़ाव के फलस्वरूप कई ऐसी लिपियों को समर्थन प्राप्त है। विभिन्न क्षेत्रों से भारतीय भी सांस्कृतिक सौंदर्य व अन्य ऐसे ही उद्देश्यों से इसी प्रकार रचनात्मक निर्णय ले सकते हैं। अंततः चयन होनेवाली लिपि के मानकीकरण और विस्तारित करने की आवश्यकता होगी, जिसमें सभी क्षेत्रीय ध्वनियों को समाहित किया जा सके।

अनेक सुविधाओं से संपन्न सामान्य लिपि

यह सबसे अभिनव, व्यावहारिक और भावी विकल्प है। भारत में सदैव लिपियाँ सामयिक तकनीक और लेखन सामग्री की उपलब्धता के आधार पर चुनी व ढाली गई हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण में लेखन कार्य अधिकतर ताड़ के पत्तों पर किया जाता था और इसलिए सीधे आकार के लेखन से उनके कट जाने से उन्हें बचाने के लिए गोलाकार लेखन उपयुक्त पाया गया। उत्तर-पश्चिम में लेखन लकड़ी की सतहों पर होते थे और इसलिए सीधे आकार व घसीटे उचित समझे गए।

आज डिजिटल युग है, जिसमें अक्षरों की रचना लेखन सामग्री की अपेक्षा की-बोर्ड/कुंजी-पटल से की जाती है और अब संभाषण/ध्वन्यात्मक पद्धति पर आधारित तकनीक की (आवाज पहचान से लेखन रूपांतरण) की दिशा में तीव्रता के साथ कार्य आगे बढ़ रहा है। ऑप्टिकल कैरेक्टर, लिखावट, भाषण की पहचान से लेखन व पाठ में रूपांतरण, वॉयस सिंथेसिस अर्थात् आवाज का लेखन/पाठ में रूपांतरण और इस प्रकार की अन्य तकनीक समय की माँग हैं। भारतीय लिपियाँ संतोषजनक ढंग से इस दिशा में कुछ विशेष नहीं कर पाईं। भारतीय बहुभाषी सुविधावाला पहला स्मार्टफोन अभी हाल ही में बाजार में आया है।

भारतीय भाषाओं के लिए उक्त तकनीक पर कार्य करनेवाले वैज्ञानिक समुदाय में सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक नई सामान्य लिपि का विचार उत्पन्न हो चुका है। इस विचार के आधार पर ही सामान्य लिपि के उद्देश्य से कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं, जो पेटेंट होने की प्रतीक्षा में हैं। सामान्य-लिपि बनने में सक्षम लिपि में निम्नलिखित गुण अपेक्षित होंगे—

1. उसे वर्तमान और भविष्य की तकनीक के साथ सबसे अधिक सुसंगत होना चाहिए।
2. जन साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्ति की दृष्टि से इसे शीघ्र सीखने योग्य होना चाहिए/(एक घंटा में!)।
3. सभी भारतीय भाषाओं में अंतर्निहित सार ध्वन्यात्मक ढाँचे पर आधारित होना चाहिए।
4. बिना जटिल संयोजन के कम लागत में बननेवाली रूपरेखा हो।
5. अभी सुंदर रचनात्मक और करसिव लेखन में अपने मूल तत्त्वों को स्वतः समाहित कर सके।
6. न्यूनतम की-बोर्ड/कुंजी पटल चिह्नों के साथ लिखने या टाइप करने में सक्षम होना चाहिए।
7. देखने में अनेक भारतीय भाषाओं से विशेषता वाले आकार पर स्मृति सहायक बनना होगा।

जैसाकि ऊपर संकेत दिया गया, वैज्ञानिक समुदाय ने पहले से ही कम-से-कम एक ऐसी सामान्य लिपि का निर्माण किया है। आई.आई.टी. मद्रास में डॉ. वी. श्रीनिवास चक्रवर्ती, जैव प्रौद्योगिकी के प्राध्यापक हैं, जिन्होंने कंप्यूटेशनल

तंत्रिका विज्ञान और पैटर्न पहचान पर काम किया है। तकनीकी अपेक्षाओं के प्रत्युतर में एडवांस कंप्यूटिंग के विकास के लिए केंद्र (सीडैक, पुणे) में उन्होंने भी नवाचार विकसित किए। तब उन्हें भी डिजिटल प्रौद्योगिकी के साथ वर्तमान भारतीय लिपियों की अनुकूलता की चुनौतियों का सामना करना पड़ा। यह लिपि संस्कृत वर्णमाला पर आधारित है, परंतु अधिक अमूर्त और प्रारंभिक स्तर पर है। उन्होंने इस लिपि का नाम 'भारती' रखा है।

इस लिपि में प्रवाह लेखन सहजता से किया जा सकता है और वर्तमान अधिकांश लिपियों की तुलना में यह आशुलिपि की तरह होगी, पर ध्वन्यात्मक प्रतिनिधित्व की दृष्टि से यह तमिल लिपि की तुलना में अधिक सटीक होगी। लिपि की प्रवाह प्रकृति से यह स्वत: ही सुलेखन डिजाइन करने में सहायक है।

सामान्य लिपि आरंभ करने के लिए महत्त्वपूर्ण उपाय

समाज में एक सामान्य लिपि को समानांतर ढंग से और एक पीढ़ी की समयावधि में लागू करना होगा। शिक्षा के क्षेत्र में माध्यमिक विद्यालयी स्तर से ऊपर सभी पाठ्यक्रमों में आगे इसे तत्काल प्रभाव से लागू किया जाए। माध्यमिक स्कूल से किसी भी ग्रेड से उत्तीर्ण होनेवाले छात्रों का इस उद्देश्य से परीक्षण होना चाहिए। सामान्य लिपि के प्रयोग को सार्वजनिक स्थानों में वाणिज्यिक विज्ञापन, उत्पाद लेबलिंग, सार्वजनिक संकेतक, दूरसंचार उपकरणों और सरकारी लोगो एवं दस्तावेजों के लिए क्रमिक ढंग से लागू करने के निर्देश दिए जाएँ, साथ ही आवश्यक होने पर समानांतर रूप से अन्य लिपियों के प्रयोग की अनुमति हो।

सामान्य लिपि के व्यापक प्रसार उपरांत उसके अपनाए जाने को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा शैक्षिक अनुदान और सशर्त सब्सिडी दी जा सकती है।

जैसाकि इस पुस्तक के पूर्व भाग में कहा गया है, वर्तमान में जहाँ पाठ्यसामग्री केवल अंग्रेजी (वास्तविक सामान्य भाषा और लिपि) में है, वहाँ उच्च शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सबसे पहले भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराने की आवश्यकता होगी। ऐसा हो जाने पर सर्वप्रथम उच्च शिक्षा हेतु सभी मानकीकृत पाठ्यक्रम की सामग्री पहले सामान्य क्षेत्रीय भाषाओं, परंतु सामान्य लिपि में प्रकाशित की जा सकती है। विभिन्न राज्य सरकारें,

यदि चाहें तो अपनी पुरानी लिपियों में इसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से लिप्यंतरित करने का विकल्प अपना सकती हैं। आनेवाले दिनों में इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप/दस्तावेज का रूपांतरण सरल हो जाएगा। उच्च गुणवत्ता की मुद्रित सामग्री को सामान्य लिपि में उपलब्ध कराने पर केंद्र द्वारा आर्थिक सहायता दी जा सकती है।

सामान्य लिपि को लागू करने हेतु प्रोत्साहन देने के अतिरिक्त यह भी अंतर्निहित होगा कि यदि कोई राज्य सरकार प्रदेश के छात्रों को व्यावहारिक तौर पर सामान्य लिपि अपनाने से वंचित करती है तो उस स्थिति में यह दंडनीय होगा। इसका सीधा-सीधा अर्थ यह होगा कि वहाँ के युवा देश भर में नौकरी की प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से घाटे की स्थिति में होंगे। इसी तरह इसका अर्थ यह भी होगा कि उस राज्य में निवेश के इच्छुक व्यापारियों को स्थानीयकरण का अतिरिक्त अर्थ-बोझ झेलना होगा।

संभावित आपत्तियाँ और उनका निराकरण

1. विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएँ बोलनेवाले अपनी परंपरागत लिपियों से जुड़े होते हैं। नई लिपि अपनाने से उनके भावनात्मक लगाव पर आँच तो नहीं आएगी?

उत्तर—पहले की पीढ़ियों की तुलना में आज का युवा कहीं अधिक भविष्यवादी और व्यावहारिक है। वह सभी बातें राष्ट्रीय और यहाँ तक कि वैश्विक दृष्टि से देखता है। वह अधिक रचनात्मक भी है। एक बार यदि यह समझ में आ जाता है कि अतीत में भी क्षेत्रीय भाषाओं ने समय-समय पर लिपियों को बदला है तो एक सामान्य लिपि अपनाने के तर्क को आशातीत समर्थन मिलना स्वाभाविक है। फिर लिपि एकीकरण के प्रयासों के अंतर्गत सामान्य लिपि को चरणबद्ध पद्धति से प्रथम पीढ़ी को प्रशिक्षण देने से प्रारंभ किया जा सकता है। ऐसा भी संभव है कि कुछ समय के लिए हमें विपरीत ढंग से सोचना पड़े।

दूसरा, क्षेत्रीय संरक्षणवाद/क्षेत्रवाद कभी भी क्षेत्रीय भाषाओं को इस दृष्टि से सक्षम नहीं बनाता कि वह अन्य वैश्विक सांस्कृतिक, बल्कि यहाँ तक कि बहुसंख्यक भाषा हिंदी के भी दबाव का सामना करने में समर्थ हो जाएँ। सामान्य ज्ञान यह कहता है कि राष्ट्र सभी भाषाओं को राष्ट्र के साथ गति मिलाकर विकसित और समृद्ध बनाने के लिए सभी क्षेत्रीय शक्तियों को संगठित

और एकजुट होने का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सामान्य ध्वन्यात्मक लेखन प्रणाली के बल पर एक सार्वभौमिक लिपि का निर्माण इस दिशा में सबसे बड़ा कदम होगा। सभी भारतीय भाषाएँ पाणिनि वर्णमाला के आधार पर ही बनी हैं, बल्कि तमिल लिपि इसी प्रणाली में ही अन्यों की तुलना में एक स्तर तक अधिक अमूर्त एवं विलग है।

□
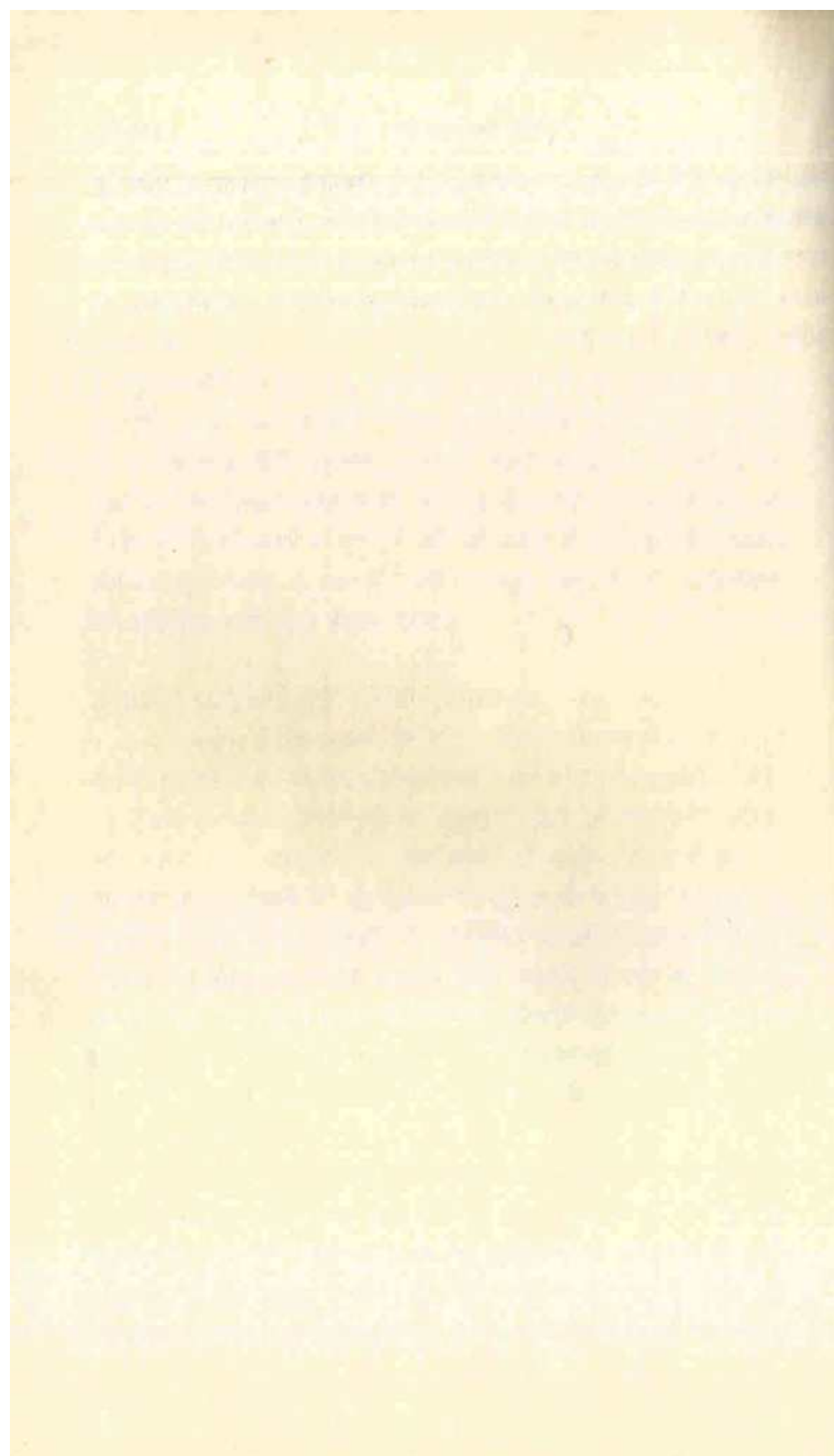
परिशिष्ट–1

भाषा की प्रौद्योगिकी
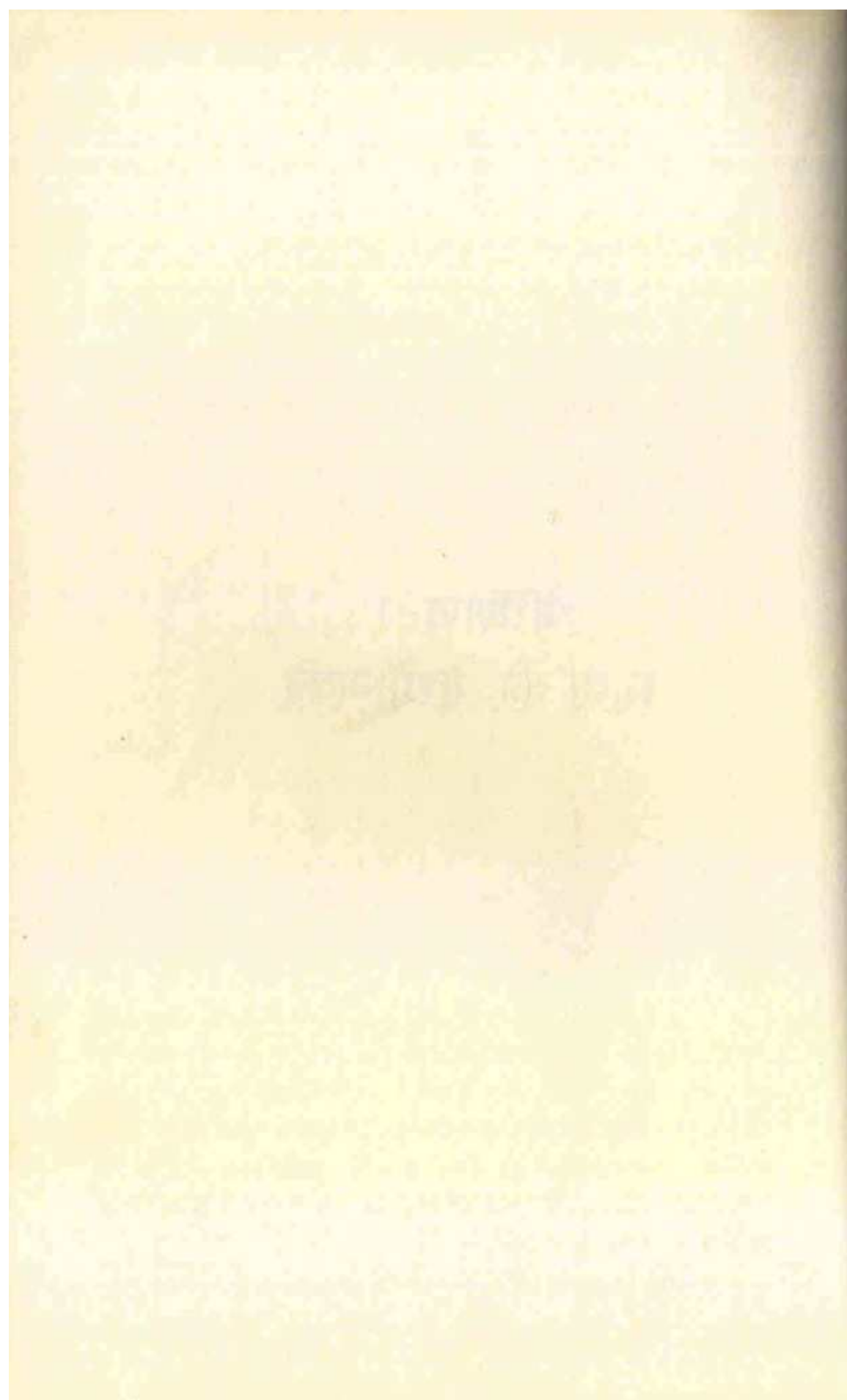
बहुभाषी बाजारों के लिए तकनीकी समर्थन

1. बहुभाषी वैश्विक वास्तविकता है। अंग्रेजी सहित किसी भी एक भाषा के प्रभुत्व से कहीं दूर है। दुनिया की कुल जनसंख्या की 91.5 प्रतिशत आबादी पहली या दूसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी नहीं बोलती है।
2. इस वास्तविकता के साथ सभी महाद्वीपों में कॉरपोरेट कंपनियाँ पहले से ही किसी विशेष बाजार में प्रवेश करने के लिए अपने उत्पादों के 'स्थानीयकरण' की परंपरा शुरू कर चुकी हैं। यह पहले से ही दुनिया भर में मानक के तौर पर व्यवहार में लाया जा चुका है। इसलिए कानून बना दिया जाए तो भारत में भी अपवाद नहीं होगा।
3. इसके अलावा सूचना प्रौद्योगिकी पहले से ही बहुभाषी माहौल और इंटरफेस के लिए प्लेटफॉर्म बनाने की दिशा में तेजी से प्रगति कर चुकी है। संबंधित सॉफ्टवेयर उत्पादों के लिए सॉफ्टवेयर विकास भी किया गया है। यह बहुभाषी समाज को तेजी से अभूतपूर्व और आसान तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

समय के बदलाव के साथ राज्य की प्रौद्योगिकी ने हमेशा ही भाषाओं के इतिहास को प्रभावित किया है। चाहे वह व्यापार का मामला हो या राजनीतिक प्रभाव का, उनके लिखने के लिए इस्तेमाल की गई लिपियों और तरीकों का भाषा अनुवाद किया गया। तकनीकी उपकरणों और उपलब्ध प्रशिक्षण कौशल पर निर्भर होकर भाषाएँ या तो मौजूदा सत्ता समीकरणों के तहत प्रभाव के माध्यम से विकसित हुईं या सुधार की सामूहिक प्रक्रियाओं के साथ व्यवस्थित मानकीकरण के माध्यम से विकसित हुईं।

आज के युग में हम कहाँ हैं, आइए एक नजर डालते हैं—

(क) प्रौद्योगिकी उपलब्ध है,
(ख) बहुभाषी इंटरफेस पर प्रौद्योगिकी नीति निर्देश, और
(ग) उपभोक्तावाद एवं संस्कृति के इस पहलू पर प्रतिक्रिया और बाजार की माँग?

ग्लोबल वास्तविकता पर एकांगी दृष्टिकोण

भारतीयों के एक खास वर्ग में 'वैश्वीकरण' को अकसर भूल से राष्ट्रों और संस्कृतियों का भक्षक मान लिया जाता है। यह कुएँ के मेढक की तरह बौद्धिक भ्रम की तरह हो सकता है, साथ ही सांस्कृतिक आलस्य भी संभव है। यह न केवल अव्यावहारिक है, बल्कि गलतफहमी भी है—दुनिया भर में और भारत में भाषा के उपयोग और माँग की वास्तविक हकीकत प्रस्तुत है। निम्नलिखित पाई चार्ट से विश्व स्तर पर अंग्रेजी बोलनेवालों की स्थिति का (जिनके लिए अंग्रेजी पहली या दूसरी भाषा है) पता चलता है—

ये अल्प संख्या में अंग्रेजी बोलनेवाले दुनिया में हावी नहीं हैं और भारत को छोड़, न ही होने की संभावना है।

(स्रोत : माइक्रोसॉफ्ट के 'गो ग्लोबल डेवलपर सेंटर', तकनीकी विनिर्देश।)

विश्व बाजार में 'अंतरराष्ट्रीयकरण' और 'स्थानीयकरण'

बड़ी कंपनियों की सोच अंग्रेजीकरण की नहीं है। इनमें दूरदर्शक लोगों द्वारा 'वैश्वीकरण' को अलग नजरिए से देखा जाता है, जो सबसे बड़ी कंपनियों में तकनीकी नीति को अंजाम देते हैं और उसके मुताबिक दिशा-निर्देश जारी करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित बातों से समझा जा सकता है कि

माइक्रोसॉफ्ट के आधिकारिक मानकों का कैसे पालन होता है—

वैश्वीकरण मानक यह इंगित करता है कि एक सीमा क्षेत्र के बाहर काम करने के लिए एक मंच की जरूरत है। इसलिए एक स्वतंत्र मंच के प्रति काम करना अपरिहार्य हो जाता है, ताकि सभी जगहों पर विविध संस्कृतियों के लिए तटस्थ भाषा सेट को चिह्नित किया जा सके।

'स्थानीयकरण' मानक का मतलब है कि स्थानीय उपभोक्ताओं तक पहुँच के लिए उपभोक्ता वस्तुओं और सांस्कृतिक उत्पादों को आसान बनाना, ताकि उसके बदले में स्थानीयकरण लागत में कमी आए। इसे 'वैश्वीकरण' पहल द्वारा नियोजित संसाधन इंटरफेसों के कुशल उपयोग से पूरा किया जा सकता है। स्थानीयकरण एक विशिष्ट स्थानीय बाजार के लिए कार्यक्रम अपनाने की प्रक्रिया है, जिसमें सुविधाओं के अनुरूपण (यदि आवश्यक हो) के साथ-साथ इंटरफेस का अनुवाद भी शामिल है। परीक्षण परिणाम यह सुनिश्चित करते हैं कि उत्पाद उस उद्देश्य की पूर्ति करे। कुछ स्थानों में वैश्वीकरण पर्याय के रूप में या अन्य स्थानों में 'वैश्वीकरण + स्थानीयकरण' के रूप में इस्तेमाल किया। दुनिया भर के संदर्भ में एक उत्पाद को बेहतर बनानेवाली सभी गतिविधियों का वर्णन करने के लिए अंतरराष्ट्रीयकरण टर्म का बेहतर इस्तेमाल किया जाता है।

जरूरत पर प्रतिक्रिया—उपलब्ध तकनीक

''वैश्वीकरण के बढ़ते रुझान के बावजूद भाषा, संस्कृति और बाजार की खासियत अब भी अंतरराष्ट्रीय उपयोगकर्ताओं के लिए बेहद प्रासंगिक है।''

दुनियां भर की बात करें तो कुल 193 देश हैं और आज उनमें 350 से अधिक प्रमुख भाषाओं का उपयोग किया जा रहा है।

बेशक अंग्रेजी दुनिया भर में व्यापार भाषा के रूप में अपनी भूमिका निभाती है। इसके बावजूद पहली या दूसरी भाषा के रूप में यह केवल दुनिया की 8.5 प्रतिशत आबादी द्वारा ही बोली जाती है। दुनिया की आबादी के 94 प्रतिशत लोगों को देसी भाषा में ही जानकारी प्रदान की जाती है। यह जानकारी दुनिया की भाषाओं में से 347 (लगभग 5 प्रतिशत) में उपलब्ध कराने की आवश्यकता होगी, जहाँ कम-से-कम दस लाख की आबादी है। यह विशेष रूप से तब है, जब वैश्वीकरण के रुझान से उनके बाजार में उपयोगकर्ताओं की संबंधित तकनीक और उनकी उपलब्धता के साथ-साथ उम्मीदों की बढ़ोतरी हो चुकी है।

माइक्रोसॉफ्ट विंडोज 'विंडो 98' करीब 100 और 'विंडो विस्टा' 30 भाषाओं को सपोर्ट कर चुका है—
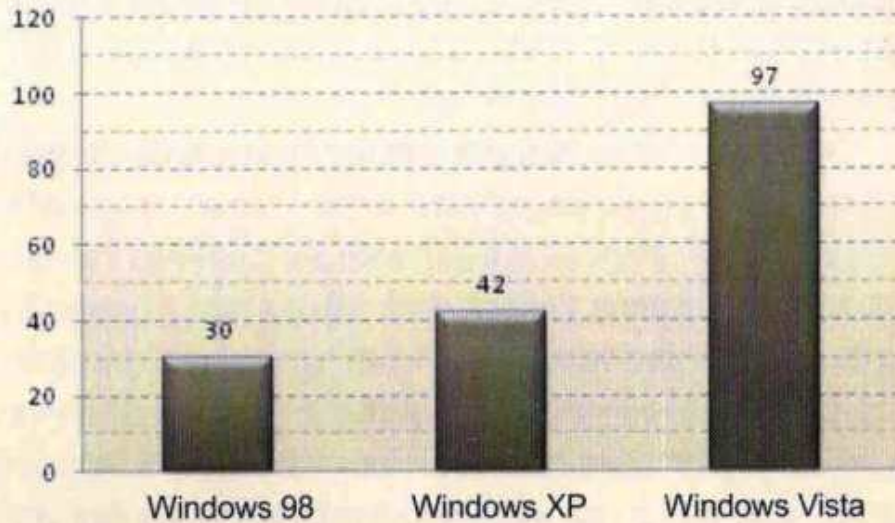
(स्रोत : माइक्रोसॉफ्ट का 'गो ग्लोबल डेवलपर सेंटर' तकनीकी विनिर्देश।)

तकनीकी दिग्गज भाषा के उन बाजारों में उन्मुख हो रहे हैं, जहाँ कम-से-कम दस लाख वक्ता भी मिल रहे हैं। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि उन लोगों द्वारा जापानी, चाइनीज, हिब्रू आदि की तुलना में यहाँ तक कि प्रमुख भारतीय भाषाओं को भी शीर्ष प्राथमिकता नहीं दी जाती है। जाहिर है, विशेष रूप से पेशेवर और शैक्षिक वातावरण में अनुवाद कैसे किया जाए, इसकी अस्पष्टता भाषा नीति और उनके उपयोग की वजह से ही है।

एस्टोनियाई के साथ अन्य भाषाओं ने सालों पहले से ही मदद की है (एस्टोनियाई की आबादी केवल 12,90000 है—(भारत में एक छोटे शहर की तुलना में छोटी आबादी)। हिब्रू (एक भाषा, जिसे 60 साल पहले तक 'मृत' माना जाता था), तातार (रूस और बाद के सोवियत राज्यों में, जो अल्पसंख्यक लोगों द्वारा बोली गई, लेकिन उनका खुद का एक अलग देश नहीं है)। ऐसी भाषाओं में अफ्रीकी देशों में हौसा, अम्हारिक और अफ्रीकंस आदि भी शामिल हैं।

कई भारतीय भाषाएँ भी वर्तमान में कंप्यूटिंग इंटरफेसेज (उनके बढ़ते उपयोग की प्रत्याशा में) के लिए समर्थित भाषाओं की सूची में शामिल हैं। यहाँ अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में से सिर्फ कुछ की टेबल प्रस्तुत है। इसके साथ ही सभी भारतीय

भाषाओं की सूची भी, जो वर्तमान में प्रत्येक देसी वक्ता को समर्थन कर रहे हैं।

कंप्यूटिंग इंटरफेस के लिए कंप्यूटिंग इंटरफेस को समर्थित भाषा व समर्थित भारतीय भाषाएँ	मूल निवासी बोलनेवालों की संख्या मूल भाषा बोलनेवालों की संख्या (लाख में)
एस्टोनियाई	10.29
कोंकणी	70.4
फिनिश	50
असमिया	160
हिब्रू	50.3
नेपाली	170
टाटर	50.4
सिंहल	170
क्रोएशियाई	50.5
उड़िया	330
डेनिश	55.6
गुजराती	500
अफ्रीकी	70.2
उर्दू	650
चेक	100
तमिल	700
थाई	200
मराठी	730
अम्हारिक (इथियोपिया)	250
तेलुगू	750
फिलिपिनो	280
पंजाबी	1000
हौसा (लैटिन लिपि)	350
हिंदी	1800
तुर्की	630
बांग्ला व बंगाली	2100

(बँगलादेश और भारतीय बंगाल के लिए सॉफ्टवेयर द्वारा अलग से दिया जानेवाला स्थानीयकरण)

(स्रोत : माइक्रोसॉफ्ट विंडोज लैंग्वेज डाक्यूमेंट पैक्स।)

भारतीय दूरसंचार और स्मार्टफोन के बाजार में सभी भाषाओं के संकेतक हैं। प्रौद्योगिकी कंपनियाँ बहुभाषी इंटरफेस प्रदान करने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। उदाहरण के लिए, मोटोरोला के 'मोटो जी' और 'मोटो ई' गजेट के सफल होने के बाद माइक्रोमैक्स ने 'यूनिट 2' को लॉन्च किया, जो संस्कृत के साथ-साथ कई प्राकृत और बहुभाषाओं को सपोर्ट करता है। केवल यही फोन इस देश में 21 भाषाओं को सपोर्ट करनेवाला बना, जिसे हर भारतीय के उद्‌देश्य की पूर्ति करने के लिए बनाया गया। यह डिवाइस अंग्रेजी, हिंदी, गुजराती, पंजाबी, मलयालम, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, उड़िया, बंगाली, असमिया, मराठी, नेपाली, बोडो, डोगरी, कोंकणी, कश्मीरी, मैथिली, मणिपुरी, संस्कृत और सिंधी को भी सपोर्ट करता है।

प्रौद्योगिकी का भविष्य

निम्नलिखित रोडमैप की कॉरपोरेट सॉफ्टवेयर दिग्गजों द्वारा परिकल्पना की गई है— यह वह तकनीकी प्रतिमान, जो इस डिजिटल युग में हर दूसरे उद्योग बदल देता है और उस क्षेत्र में प्रवेश करता है—

1. लैंग्वेज-नेचुरल ऑपरेटिंग सिस्टम के साथ एमयूआई (मल्टीलिंगुअल यूजर इंटरफेस) के निर्माण में सपोर्ट करना।
2. बहुभाषी परिदृश्यों का समर्थन करने के लिए कंफिगर करने योग्य पैकेजिंग तैयार करना, उनका विकास और स्थापना करना।
3. कई भाषाओं के साथ सिंगल इमेज का विकास।
4. एक उन्नत सेवारत मॉडल बने, जहाँ निष्पादन योग्य कोड को स्वतंत्र रूप से संसाधनों का अद्यतन किया जा सके।
5. बहुभाषी अनुप्रयोगों के निर्माण के लिए डेवलपर का सपोर्ट।

□

परिशिष्ट–2

देश में अध्ययन के कुछ प्रकरण
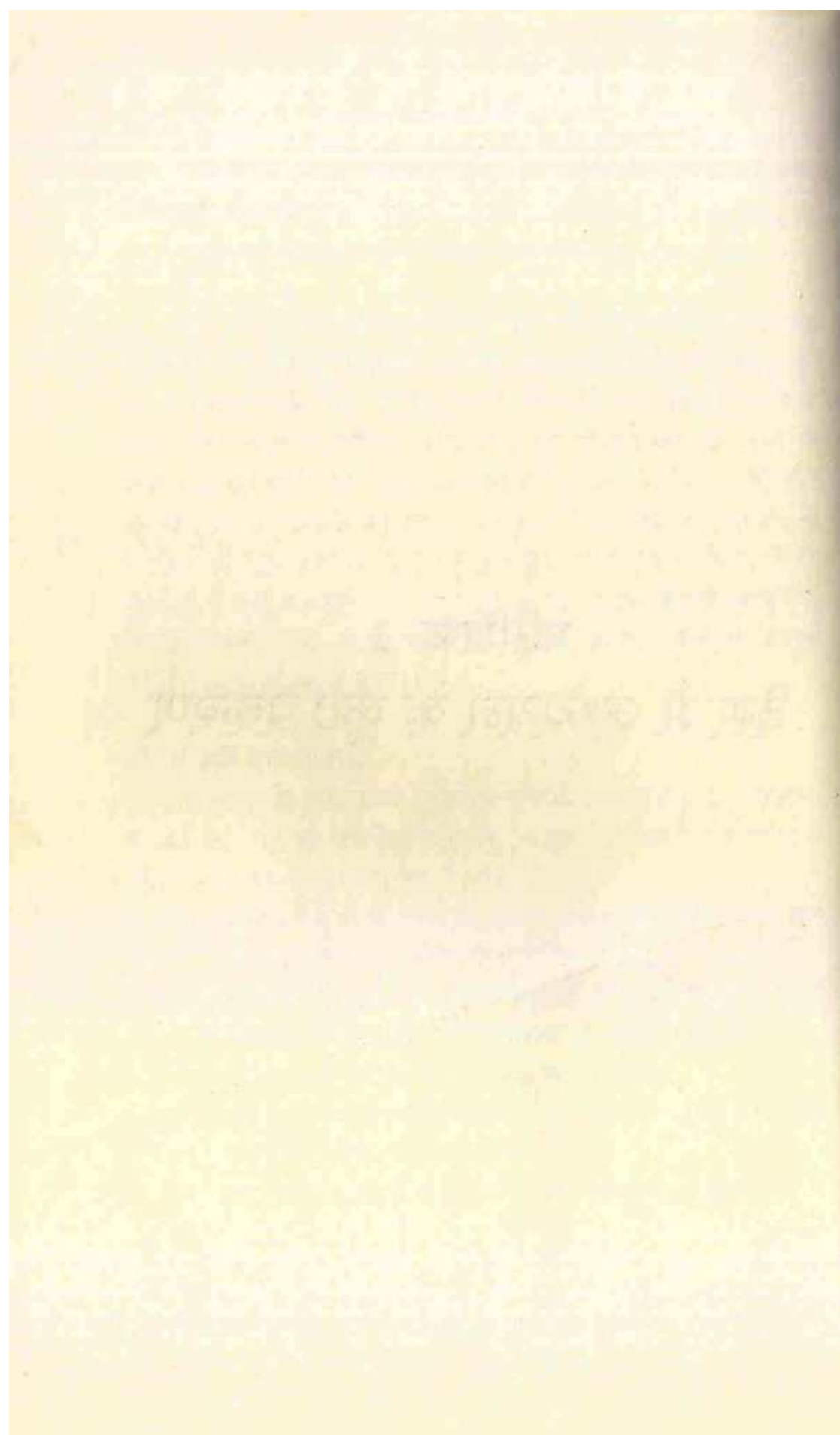
इजराइल–हिब्रू का पुनरुद्धार

आधुनिक समय में भाषा पुनरुद्धार के उल्लेखनीय उदाहरणों में एक है हिब्रू। हिब्रू एक समय सिर्फ यहूदी लोगों के पवित्र साहित्य की भाषा थी। हिंदू धर्म में वही स्थिति संस्कृत की थी। 20वीं सदी के गुजरने के बाद भी संस्कृत हर रोज बोली जानेवाली भाषा नहीं बन सकी। व्यवस्थित प्रयास से हिब्रू को पुनर्जीवित किया गया था। इसकी पहली शुरुआत समकालीन हिब्रू साहित्य के लेखकों से हुई। यहूदी प्रवासी दुनिया के कई अलग-अलग देशों में फैल गए। वे जिन देशों में गए, उन देशों की भाषाओं में भी बात करने लगे। वैसे तो यूरोपीय यहूदी भी 'यिद्दीश' में बोलते थे। इस भाषा की शब्दावली हिब्रू शब्दों के मिश्रण के साथ जर्मन से व्युत्पन्न है। यहाँ तक कि यहूदी रूसी, पोलिश और अन्य भाषाओं में भी बात करते थे। उन देशों की भाषा बोलते थे, जहाँ वे रहते थे।

कई मायनों में संस्कृत आज जिस स्थिति में है, उसकी तुलना में हिब्रू अधिक 'मृत' थी। तब संस्कृत में विशाल भारतीय भाषाओं की शब्दावली एक तरह से छा गई थी, जोकि हिब्रू में उपलब्ध नहीं थी। फिर भी हिब्रू को मृतप्राय स्थिति या पवित्र भाषा से पुनर्जीवित कर उसे एक साहित्यिक और आम बोलचाल की भाषा बना दिया गया। बाद में इसे इजराइल में व्यापार, इंजीनियरिंग और चिकित्सा की भाषा के रूप में भी चुना गया।

जैसाकि थिओंगो वा नगूगू बताते हैं कि औपनिवेशिक प्रथा तोड़ने के लिए इजराइल ने विपरीत प्रक्रिया अपनाई। औपनिवेशिक समाजों में हमें अलग-अलग अनुभव मिले हैं। हमारे घर में रोजमर्रा के लिए इस्तेमाल भाषा और जनभाषा को औपनिवेशिक भाषा अंग्रेजी से नीचा और अपर्याप्त माना जाता है।

हमारे यहाँ घर और दफ्तर के बीच तथा धार्मिक गतिविधि और आम जगह पर प्रयोग होनेवाली भाषा में कोई संबंध नहीं है। इजराइल ने यहूदियों की धार्मिक भाषा हिब्रू को राज्य नीति के जरिए बढ़ावा देते हुए गतिरोध को खत्म कर दिया। भारत ने एक तरह से धार्मिक भाषा संस्कृत को और भारतीय भाषाओं, दोनों को खारिज कर दिया। बच्चों को पहले रोजमर्रा की भाषा सीखनी पड़ती है।

हमने धार्मिक भाषा, रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा और कार्यालय में इस्तेमाल की भाषा के बीच संबंध को तोड़ दिया है। इजराइल स्थित बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कारोबार के लिए संचार के माध्यम के रूप में हिब्रू का ही इस्तेमाल करती हैं। जब मैंने हाइफा, इजराइल कार्यालय में दौरा किया, तब यह जानकर हैरान रह गया कि कार्यालय में पावरप्वॉइंट की प्रस्तुतियाँ हिब्रू में ही दी गईं। सभी की-बोर्ड में हिब्रू कैरेक्टर्स की सुविधा थी।

इजराइल में यह सब स्पष्ट सोच और नीति का नतीजा था। सन् 1913 में जब फिलिस्तीन के यहूदियों के लिए एक इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित किया जाना था, तब जर्मन यहूदी विज्ञापन एजेंसी ने इसे जर्मन माध्यम में शुरू करने का प्रस्ताव दिया था। तब जर्मन विज्ञान और इंजीनियरिंग के लिए प्रमुख भाषा थी। हालाँकि फिलिस्तीन में बसे पूरे यिशुव यानी यहूदियों के समुदाय ने टेकनियोन का विरोध किया था और हिब्रू माध्यम से पढ़ाने की वकालत की थी। इस तथ्य के बावजूद कि उस समय हिब्रू में विकसित तकनीकी शब्दावली नहीं थी। यहाँ तक कि हिब्रू में तकनीकी शब्दावली संस्कृत में आज उपलब्ध तकनीकी शब्दावली की तुलना में कम विकसित थी। तब भी टेकनियोन में हिब्रू माध्यम से पढ़ाई शुरू हुई। अब यह आईआईटी में तकनीकी शिक्षा संस्थानों में शीर्ष रैंकिंग पर है। इजराइल से भारत शस्त्र प्रणालियों का आयात करता है, जिन्हें हिब्रू माध्यम की चर्चाओं और दस्तावेजों के माध्यम से विकसित किया गया है। यहाँ उस छोटे देश इजराइल की बात हो रही है, जिसकी पूरी आबादी दिल्ली की आबादी से भी कम है।

□

संयुक्त राज्य अमेरिका—अंग्रेजी प्रभुत्व के प्रति व्यवस्थित नीति

अमेरिका और भारत-विविधता तथा बहुसंस्कृतिवाद के विभिन्न विचार

आर्थिक और तकनीकी महाशक्ति के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका आज अंग्रेजी भाषा का प्रमुख बना हुआ है। भारत अमेरिका के साथ अंग्रेजी भाषा की विरासत में योगदान करता है, या कम-से-कम आंशिक रूप से अंतरराष्ट्रीय मामलों में अमेरिका की प्रबलता के लिए अंग्रेजी के उपयोग को बढ़वा देकर कर्ज अदा करता है। इसके अलावा, भारत और अमेरिका भी एक लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा हैं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कि अमेरिका भी भारत की तरह बहुसांस्कृतिक देश है या बहुसंस्कृतिवाद और विविधता के साथ एक रचनात्मक प्रयोग का कम-से-कम एक हिस्सा है।

भाषा-नीति से संबंधित इस संक्षिप्त लेख में अमेरिका से जुड़े कुछ प्रमुख बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है, जो यह दरशाता है कि—

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शक्ति के लिए भाषा को एक टूल के रूप में प्रयोग करने के लिए अमेरिका द्वारा काफी सामाजिक और राजनीतिक दबाव लगातार डाला जा रहा है। भारत के अंग्रेजी बोलनेवाले कुलीन वर्ग के बीच लोकप्रिय धारणाओं के विपरीत 'विविधता' और 'बहुसंस्कृतिवाद' की अमेरिकी समझ भारतीय दृष्टिकोण से मौलिक रूप से अलग है और मौजूदा भारतीय प्रारूप की तुलना में अमेरिकी उपनिवेश के लक्षण सदियों से मौलिक रूप से अलग कर रहे हैं।

हम यह मान लेते हैं कि भाषा के पैटर्न जैविक तौर पर विकसित होते हैं और भारत में अंग्रेजी का विकास स्वाभाविक रूप से जैविक माँग का नतीजा है। लेकिन हकीकत तो यह है कि यह विचार सच नहीं है। यहाँ तक कि अंग्रेजी भाषा की प्राथमिकता को लेकर दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश संयुक्त राज्य अमेरिका के मामले में भी सही नहीं है। अमेरिका में अंग्रेजी का प्रभुत्व संघर्ष और समझौते की एक निरंतर रणनीति का परिणाम है। अंग्रेजी के प्रभुत्व से अधीनस्थ अन्य भाषाओं को खत्म करने के लिए विचार भी सही नहीं है। अमेरिका में अहस्तक्षेप भाषाई माहौल कभी नहीं था।

यहाँ भारत को भी अलग नजरिए से नहीं देखा जाना चाहिए, लेकिन एक सभ्यता के रूप में वैश्विक माहौल के भीतर वे शक्तियाँ यहाँ भी कार्य करती हैं। जहाँ गैर-पक्षपातपूर्ण लोकतंत्र का महज दिखावा होता है, वहाँ कोई मंच बनाने के लिए कोई नीति नहीं होती है, जो देशी भाषाई पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत करे। तब इसका मतलब स्पष्ट है, देसी प्राकृत और उनके जमीनी स्तर पर किए गए प्रयासों की विफलता के लिए माहौल बनाए जा रहे हैं। वे लगातार अंग्रेजी की अनिवार्यता के बारे में मिथकों से अभिभूत हैं। एक प्राकृत के साथ राजनीतिक खेल खेला जाता है और अंग्रेजी से समझौता करने के लिए समाधान के रूप में पेश कर दिया जाता है।

ऐसी स्थिति में सही रास्ता यही है कि भारत की केंद्र सरकार सभी राज्यों के साथ समन्वय स्थापित कर जैविक सभ्यता पारिस्थितिकी तंत्र को फिर से बनाए, ताकि सभी प्राकृत का पुनरुद्धार हो सके। अन्य देशों के विपरीत, भारत में एक ऐसी नीति की जरूरत है, जो विविधता के मानकों के साथ एकीकरण के मानकों को संतुलित करे।

अमेरिका में अंग्रेजी को व्यवस्थित तरीके से लागू करने का संक्षिप्त इतिहास

अमेरिका में किसी भाषा को आधिकारिक तौर पर नामित नहीं किया गया है। कारण यह है कि इसके निर्माण में प्रमुख जातीय बल अंग्रेजी मूल के लोग थे और वह वास्तविक भाषा थी। इसके साथ ही कुछ समय बाद अन्य जातियों के आप्रवासियों ने भी अंग्रेजी सीखने के लिए उम्मीद जताई थी। 'जातीय' भाषाओं को निजी स्कूलों, घरों, चर्चों और क्लबों में आगे भी जीवंत

रखा जा सकता है। लेकिन कम-से-कम 1960 के दशक तक, अमेरिका में किसी भी करदाता को 'अल्पसंख्यक' भाषा के रख-रखाव के लिए अनुदान मिलने की उम्मीद नहीं थी। इसलिए अमेरिका में भाषा कानून पर विचार करने की कोई जरूरत नहीं थी।

हालाँकि, यह केवल आधा सच है। अमेरिका के एंग्लो सैक्सन के प्रभुत्व और उसके प्रारंभिक गठन से इस तथ्य को छुपाया गया कि अमेरिकी समाज, यहाँ तक कि अपने उपनिवेश के दिनों में भी, स्थानीय तौर पर हमेशा बहुभाषी समाज रहा।

उस औपनिवेशिक काल में अमेरिका में भाषाई विविधता में (जर्मन, डच, फ्रेंच, आदि) कई यूरोपीय भाषाएँ शामिल थीं। इस दौरान अमेरिकी भारतीयों की कई भाषाएँ भी जोड़ी गईं, जिन्हें सीखना जरूरी था। तब ईस्ट कोस्ट के पास मौलिक 13 राज्यों को शामिल किया गया। अपने क्षेत्रीय विस्तार, महाद्वीप पर कब्जा करने से पहले और आगे आनेवाले अन्य आप्रवासी गैर-अंग्रेजी भाषी लोगों को भी अमेरिका ने शामिल किया।

तब शुरुआती दिनों में जाहिर तौर पर काफी हिंसा हुई थी। नरसंहार में सबसे अधिक देसी अमेरिकी 'भारतीय' शामिल थे, जो अब इतिहास की बात है। यहाँ तक कि बसनेवाले यूरोपीय लोगों में भी अकसर गैर-अंग्रेजी भाषा के खिलाफ प्रतिक्रिया होती थी। 1750 के दशक में, बेंजामिन फ्रैंकलिन ने अंग्रेजी बोलने के लिए जर्मनी के लोगों को पेनसिल्वेनिया में बसाने की चेतावनी दी थी। उन भागों में सड़कों के द्विभाषी संकेतकों के बारे में शिकायत पर वह खफा हो गए थे। उन्होंने जर्मनवासियों को 'बोअर्स' कहकर अपमानित किया और उन्हें जातीय कलंक करार दिया। इस अविश्वास और असंतोष का हिस्सा बनने के कारण संभवतः देसी अमेरिकी 'भारतीयों' के खिलाफ लड़ाई में भाग लेने के लिए इन शांतिवादी जर्मनों का इनकार हो सकता है।

अमेरिका के एक और 'संस्थापक-जनक', बेंजामिन रश ने उन्हीं जर्मनवासियों के बसने के प्रति नरम दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने द्विभाषी कॉलेजों में स्वैच्छिक नामांकन के माध्यम से अंग्रेजी बोलनेवालों के रूप में आत्मसात् करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया और कहा कि उन्हें जर्मन के साथ अंग्रेजी भी सीखनी होगी।

यह तय हुआ, जब महाद्वीपीय कांग्रेस ने जर्मन और फ्रेंच में प्रसारित

महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों एवं अनुवाद के जरिए क्रांतिकारी कारण की अपील को व्यापक करना चाहा था, ताकि गठबंधन की ताकतों का निर्माण हो सके। इस प्रकार, इन कम शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का सहयोगी चुनने के लिए एक निश्चित डिग्री हासिल करने के बहाने द्विभाषावाद को प्रोत्साहित किया गया था। एक बार उन्होंने भी द्विभाषी नीति के हिस्से के रूप में अंग्रेजी सीखी। बाकी को एक समाज की प्राकृतिक गतिशीलता के लिए छोड़ दिया गया, जिसमें अंग्रेजी ही वाणिज्य और सरकार की प्रमुख भाषा थी।

उसी युग में अमेरिका के दूसरे राष्ट्रपति जॉन एडम्स ने अमेरिकी अंग्रेजी के लिए सरकारी मानक स्थापित करने के लिए केंद्रीकृत भाषा अकादमी का प्रस्ताव रखा, लेकिन सरकार की सीमाएँ होने के कारण ज्यादातर सांसदों ने इसमें सरकार के शामिल होने के विचार को खारिज कर दिया। तब भी अमेरिका में अंग्रेजी को राजभाषा के बजाय व्यावहारिक साधन के रूप में माना गया था।

लेकिन भाषा मानकीकरण ने अपने दम पर अमेरिकी राष्ट्रवाद को परिभाषित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। अतिराष्ट्रवाद ने खुद ही यह माँग उठाई कि ब्रिटिश अंग्रेजी से विशिष्ट होने के लिए अमेरिकी अंग्रेजी का मानकीकरण हो। इसमें वर्तनी, शब्दावली, प्रयोगों और औपचारिक या अनौपचारिक लेखन शैली तथा सामान्य दिशा-निर्देश भी शामिल थे। सन् 1923 में वॉशिंगटन मैकक्रोमिक, मोंटाना से कांग्रेसी सांसद ने राष्ट्रीय भाषा को 'अंग्रेजी' के बजाय 'अमेरिकन' के रूप में प्रतिष्ठापित करने का सुझाव दिया था।

जैसाकि ऊपर संकेत दिया गया है, 19वीं सदी के दौरान अमेरिका में द्विभाषी स्कूल होते थे, जो आमतौर पर जर्मन-अंग्रेजी में और कभी-कभी अन्य यूरोपीय भाषी होते थे। ये भी कई राज्यों में कानून द्वारा अधिकृत होते थे या दूसरे राज्यों में निजी तौर पर फल-फूल रहे थे। बहरहाल, यह शिष्टाचार केवल कुछ यूरोपीय भाषाओं के लिए थे, अमेरिकी देसी 'भारतीयों' के लिए नहीं, जिन्हें लगातार मिटाया जा रहा था। एंग्लीसाइजिंग शेष देसी अमरीकियों को सिविलाइजिंग मानक माना जाता है और समीकरण एंग्लो सक्सोंस के पक्ष में भारी समीकरण था। एक समय सैन्य सत्ता को पूरा करने के लिए यह एक विकल्प माना जाता था।

भारी सैन्य सफलता के बाद, अमेरिकी मूल के 'भारतीयों' की शेष आबादी को 'आरक्षण' में शामिल किया जाएगा, जिस वर्ग में उनमें से कुछ

अभी भी शामिल हैं। वे शराब के लती और आम तौर पर बेकार समाज के लोग माने गए। शिक्षित करने के क्रम में उनके बच्चों को आरक्षण से हटा दिया गया, जिसके लिए अकसर बल प्रयोग किया गया। दूर के बोर्डिंग स्कूलों में पूरी तरह से एंग्लीसाइज्ड कर दिया गया। रिपोर्ट बताती है कि उन बोर्डिंग स्कूलों में वे अपनी मातृभाषा में बोलते हुए पकड़े जाने पर दंडित किए जाते थे। 1880 के दशक में अमेरिकी संघीय भारतीय आयुक्त जेडीसी एटकिंस ने देसी अमेरिकन 'भारतीय' छात्रों के उन्मूलन की नीति का जिक्र किया है। उसमें 'बर्बर बोलियों' के अलावा 'हर दूसरे में भारतीयता में सांस्कृतिक विशेषता होने का वर्णन है।

असहिष्णुता और राज्य प्रायोजित क्रूरता भी विजय प्राप्त लोगों के साथ भाषा संबंधों की विशेषता जाहिर करती है, मसलन दक्षिण-पश्चिम अमेरिका और पोर्टो रीको में स्पेनिश बोलनेवाले। सन् 1848 की संधि से मैक्सिकन अमेरिकी युद्ध समाप्त हो गया, जिसमें कई सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण का जिक्र किया गया था। हालाँकि उसमें भाषा के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया था, उसे अस्पष्ट माना जाता रहा। तब से भाषा संस्कृति का 'सॉफ्टवेयर' है, लेकिन व्यवहार में न्यू मैक्सिको को छोड़कर स्पेनिश भाषा अधिकारों को शायद ही कभी सम्मानित किया गया। यह भी तभी संभव हुआ, जब वहाँ स्पेनिश बोलनेवालों की संख्या बीसवीं सदी से पहले ही अंग्रेजी बोलनेवालों की तुलना में अधिक थी। फिर भी न्यू मैक्सिको को अलग राज्य का दर्जा प्रदान नहीं किया गया था, क्योंकि अमेरिकी कांग्रेस को एक गैर-अंग्रेजी भाषी को बहुमत देने के लिए स्वशासन देने के प्रति सावधान किया गया था। एक लंबे और कठिन संघर्ष के बाद 1912 में इसे राज्य का दर्जा हासिल हुआ और तब औपचारिक रूप से स्पेनिश भाषा की बुनियादी सुरक्षा की गई; उदाहरण के लिए, सरकारी दस्तावेजों का द्विभाषी प्रकाशन।

दूसरी ओर, पेंसिल्वेनिया के जर्मन बाशिंदों के साथ बेंजामिन रश की रणनीति का मामला था। प्यूर्टो रिको में द्विभाषी नीति में कोई रियायत नहीं थी, लेकिन इस द्वीप पर अंग्रेजी थोपने की रणनीति अपनाई गई थी, जहाँ लगभग पूरी तरह से स्पेनिश बोलनेवाले बसे हुए थे। सन् 1898 में यह अमेरिकी उपनिवेश बन गया। जैसाकि 'भाषा नीति टास्क फोर्स' द्वारा विस्तृत रूप में बताया गया है कि प्योर्टो रिको के स्कूल 'अमेरिकीकरण' के (मतलब अंग्रेजीकरण) के लिए लड़ाई के मैदान बन गए थे। आधी सदी के लिए, एक

नीति लागू कर इन स्कूलों में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी पर जोर दिया गया।

इस बीच 'नई दुनिया' के लिए आप्रवासियों का सतत प्रवाह अमेरिका की आबादी के विकास में योगदान दे रहा था। आप्रवासियों को आत्मसात् करने के उपाय बीसवीं सदी के मोड़ पर तेजी से आक्रामक हो गए।

एक अमेरिकीकरण अभियान के बीच यह अफवाह फैली कि पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के आप्रवासी जर्मन बाशिंदों की तुलना में अंग्रेजी के उपयोग के लिए प्रतिरोधी बने और स्कैंडिनेवियाई तो पहले से ही थे।

एंग्लो सैक्सन संस्कृति और अमेरिकी के बीच पहचान के लिए सार्वजनिक और स्पष्ट लिंक तैयार किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए वफादारी का मतलब सदस्यता लेने के साथ एंग्लो सैक्सन के प्रारूप और प्रथाओं का अनुगमन करना था।

बाद में विश्वयुद्धों के दौरान, खासकर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, विद्वेष की वृद्धि हुई और शहरों की सड़कों के जर्मन नामों और सिनसिनाटी जैसे शहरों में अन्य सार्वजनिक स्थानों के नामों को एंग्लो सैक्सन नामों में बदल दिया गया था। यहाँ यह सिर्फ भाषा नहीं थी—अंग्रेजी पहले से ही मुख्य भाषा थी और कोई भी संकेतक द्विभाषी नहीं रह गया था—यहाँ तक कि नामों को भी एंग्लीसाइज्ड किया जाना था। 1917 में अमेरिकी राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने देशभक्ति के प्रतीक के रूप में अमेरिकी अंग्रेजी बनाम विभाजित वफादारी के लिए एक आधार के रूप में अन्य भाषाओं के बारे में चिंता व्यक्त की। हालाँकि, आत्मसात् करने के लिए आक्रामक उपाय लंबे समय तक नहीं चल सके; बल्कि 1924 में अमेरिका ने अंग्रेजी के उपयोग के लिए अमेरिकी इतिहास में पहली बार आव्रजन कोटा अधिनियमित किया, जो 1965 तक बरकरार रहा। अंग्रेजी के इस्तेमाल के लिए संवैधानिक अंग्रेजी भाषा संशोधन के रूप में 1981 में एक अन्य कानून बनाने की कोशिश हुई। अगर इसे सभा और सीनेट के दो-तिहाई वोट से मंजूरी दे दी गई होती और राज्य विधानसभाओं के तीन-चौथाई सदस्यों ने पुष्टि कर दी होती, तो संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारों द्वारा अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं, सभी के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया होता। हालाँकि इस मानक के लिए अब तक एक भी वोट नहीं पड़ा।

अमेरिका में बहुभाषी सहिष्णुता की हाल ही में वृद्धि

इसके बाद हाल के दशकों में, नागरिक अधिकार आंदोलन के साथ अमेरिकी राजनीति और समाज में उल्लेखनीय उदारीकरण ने जगह बना ली है। लेकिन अंग्रेजीकरण पहले से ही अमेरिकीकरण के साथ समकालीन रूप में एक महान् डिग्री करने के लिए स्थापित किया गया था। इस प्रकार अपने माध्यम के रूप में अंग्रेजी का उपयोग कर आर्थिक और तकनीकी महाशक्ति के अलावा विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका का एक प्रमुख महाशक्ति के रूप में उद्भव हुआ। इसका मतलब है कि अमेरिका ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से विदेश में (और अन्य प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्मांतरण सहित सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए) अपनी नरम नीति का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए, चीन या भारत जैसे देशों के अपतटीय स्थानों में अमेरिका बहुराष्ट्रीय निगमों में काम करनेवालों के लिए अकसर कार्यात्मक स्तर पर अंग्रेजी दक्षता हासिल करने की आवश्यकता होती है।

वहीं घरेलू बहुसांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए सहिष्णुता बढ़ रही है। अमेरिका 'पिघलता बरतन' के बारे में अकसर बहस का विषय बना करता है। नतीजतन, अमेरिका में 'जातीय' विविधता सतही है, न कि मौलिक। क्या इसका मतलब यह है कि जातीय संस्कृतियों (विचारक और लेखक राजीव मल्होत्रा द्वारा लोकप्रिय एक शब्द) को 'पचाने' के बजाय उनके देसी ऑपरेटिंग संदर्भ में उभरने की अनुमति दी जाती है? इस प्रकार, पिज्जा सभी अमरीकियों का पकवान है, जो इतालवी मौलिक स्ट्रीट फूड से बिल्कुल अलग है। या एक बेहतर उदाहरण यह है कि कैसे ज्ञान आधारित और अनुशासित योग एवं ताई ची जैसे विषयों का वाणिज्यीकरण हुआ और उनके वास्तविक दार्शनिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ से डिब्बाबंद अमेरिकी उत्पादों को हटाया जा रहा है। इन क्षेत्रों के विशेषज्ञों का सुझाव है कि इन विषयों को 'डाइजेस्टेड' रूप में लेने के वास्तविक परिणाम मूल प्रक्रियाओं और उनके खुद समाप्त होने की घटना से काफी अलग हैं।

वास्तविक समानता के साथ बहुभाषी विविधता का समर्थन करने के लिए सांस्कृतिक बुनियाद

इस बिंदु पर रुकना और विचार करना प्रासंगिक है कि बहुसंस्कृतिवाद का अमेरिकी मॉडल कई मायनों में 'पिरामिड' सरीखा है और सामरिक एवं

रणनीतिक अनिवार्यता तथा व्यावहारिकता पर आधारित है। इधर पसंदीदा भाषा अंग्रेजी वहाँ के पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य भाषाओं के मुकाबले माइंडशेयर के लिए सक्रिय रूप में प्रतिस्पर्धी है। कभी-कभी चतुराई से 'द्विभाषी' नीति में उन्हें सहयोगी भाषा के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रकार, यह नीति दो अलग और मौलिक प्रतिस्पर्धी जातीय भाषाओं, अंग्रेजी और किसी अन्य के बीच, प्रतियोगिता या सह-विकल्प में से एक है। यहाँ ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बिंदू यह है कि 'आधार' भाषा (अंग्रेजी) और अन्य भाषाओं के बीच कोई जैविक और सहायक रिश्ता नहीं है, जो उसे जीवित रखने की अनुमति देता हो। अंग्रेजी मुक्त होकर सभी बाहरी शब्दों और संबंधित अवधारणाओं को आत्मसात् कर खुद भी समृद्ध हो सकती है। इन अन्य भाषाओं के साथ भी ऐसा किया जा सकता है, लेकिन भाषाएँ संरचनात्मक रूप से एक-दूसरे का समर्थन नहीं करतीं।

भारत की सभ्यता ने विशेष भाषा को निर्मित होते देखा है, जिसे संस्कृत कहा गया। इस भाषा ने ऑपरेटिंग सिस्टम के रूप में सेवा की, जिस पर ऐतिहासिक जीवन चक्र के जरिए कई अन्य उपसंस्कृतियाँ और प्राकृत भाषाएँ बनीं। सदियों गुजरने के बाद यह भाषा नए रूपों में बदल रही है। यह सह-अस्तित्व, जैविक और संरचनात्मक संस्कृत-प्राकृत संबंध भारतीय सभ्यता की मूलभूत संस्कृति का एक रूप है और भारत के मौजूदा उदार शासन क्षेत्र के बाहर तथा भीतर उपस्थित है। भाषा और उपसंस्कृतियों के पारिस्थितिकी तंत्र के समर्थन में इसने मदद की है, जो उनके देसी संदर्भ को बरकरार रख सकता है और एक वृहद 'वैश्विक' सभ्यता के भीतर योगदान कर सकता है।

अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय कुलीन वर्ग में प्रचलित मिथक और धारणाएँ

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी के भारतीय लेखकों को तव्वजो दी जाती है। अकसर यह कहा जाता है कि भारत तेजी से इस वैश्विक स्तर पर अंग्रेजी बोलने की संस्कृति को बढ़ावा देने में योगदान कर रहा है। इसमें कोई शक नहीं है कि अपेक्षाकृत अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयों की संख्या बहुत कम है, जो द्विभाषी भी हैं। हालाँकि कई मामलों में वे केवल अंग्रेजी में ही कुशल हैं। वास्तव में 'वैश्विक' अंग्रेजी बोलनेवाले दुनिया से संबंध रखने की चाहत या

संबंध चाहने की भावना है। यह पहुँच एक सच्चे द्विभाषी की तुलना में किसी अन्य भाषा और संस्कृति से बहुत अधिक है; बल्कि बिना सोचे-समझे, यह भारत के अपने सभ्यतागत पारिस्थितिकी और इसके संरचनात्मक संसाधनों की कीमत पर अंग्रेजीकरण अपनाने के लिए एक थोक सदस्यता है।

इन अंग्रेजी-शिक्षित भारतीयों के मन में अंग्रेजी छा गई है, जिसे इतिहास के छद्म हाथों द्वारा एक जीवित एस्पेरांतो में विकसित कर दिया। एंग्लो-सैक्सन दुनिया, जिसके राजनीतिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकीय प्रभुत्व के लिए इस भाषा के माध्यम से परिस्थितियों को जैविक और मौलिक रूप से विकसित किया गया। इस प्रकार इतिहास की अदृश्य शक्तियाँ और हमारे सामने का भविष्य तैयार हुआ। इसे भारत में विकल्प भाषा के रूप में बढ़ावा देने पर विचार करना या 'विकास' की प्राथमिक भाषा के रूप में अंग्रेजी के प्रसार और उपयोग को बढ़ावे के विकल्प पर विचार करना भी बहुत 'अव्यावहारिक' है।

इस केस स्टडी से इन मिथकों के प्रति किसी भी पाठक का भ्रम दूर होना चाहिए—अंग्रेजी के लिए मौजूदा समय में व्यवस्थित तरीके से सैन्य, सरकारी और वाणिज्यिक माध्यमों में प्रतिस्पर्धा हो रही है, जबकि अन्य भाषाओं को दरकिनार कर उसकी जगह पर कब्जा कर लिया गया है। इतिहास की ऐसी ही अज्ञानता पर आधारित कल्पनाविहीन भाषा-नीति से फायदे से ज्यादा नुकसान ही होगा। इसके अलावा इस पुस्तक में दिए गए तथ्यात्मक आँकड़ों से पता चलता है कि भारत में भी अंग्रेजी दक्षता ने सीमा पर लाँघी है और तेजी घट रही है। मातृभाषा या अंग्रेजी में बिना प्रवीणता के युवा भारतीयों की पीढ़ी आगे बढ़ रही है। यह भाषा-नीति पूरी पीढ़ी के उपहास का कारण बन रही है। भारत के मानव संसाधन की क्षमता को अधिकतम करने के लिए और 'डेमोग्राफिक डिविडेंड' का पूरा लाभ लेने के क्रम में दोबारा विचार करने की जरूरत है। आजादी के बाद पिछले 65 वर्षों में 'राज्य-निर्माण' के लिए पर्याप्त संरचनाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। इसलिए 'राष्ट्र-निर्माण' के दबे मुद्दों को उठाने की दिशा में प्रगति का अब समय आ गया है।

□

चीन—राजनीतिक अखंडता के लिए लिपि का एकीकरण

चीन कुछ हद तक भारत की तरह सामाजिक राज्य है। यह देश सदियों से कमोबेश अटूट राजनीतिक निरंतरता के साथ सामाजिक माना जाता है। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि भाषा-नीति ने केंद्रीय भूमिका निभाई और इसे विभिन्न राजवंशों के प्रशासनिक केंद्रों के साथ ही मौजूदा सत्तारूढ़ दल द्वारा प्राप्त किया गया। इस संक्षिप्त लेख में उन विशेष नीतियों, विधियों और नियमों पर गौर किया गया है, जिन्हें आधुनिक समय के साथ एक सदी से अधिक समय से चीनी प्रशासन द्वारा लागू किया गया है।

लेखन प्रणाली के माध्यम से मानकीकरण—राज्य-निर्माण से राष्ट्र-निर्माण के लिए

चीन में भाषा को दर्जा दिलाने की योजना का लंबा इतिहास रहा है। चीनी राज्यों ने एक मानक भाषा के बीच विशेष रिश्ता बनाया है और दो से अधिक सदियों में उस पर राज्य का नियंत्रण है। उन्होंने कलात्मक तरीके से भाषा का इस्तेमाल किया और उसमें संशोधन कर मानकीकरण किया, ताकि एक प्रशासनिक केंद्र से साम्राज्य के राजनीतिक नियंत्रण को मजबूत बनाया जा सके। 221 ईसा पूर्व में किन सम्राट् ने चीनी लेखन प्रणाली को पहली बार आधिकारिक तौर पर विनियमित मानकीकरण करना शुरू किया। यह उनके प्रधानमंत्री ली सी के प्रस्ताव के आधार पर किया गया था।

यह उन उपायों का हिस्सा था, जिसके तहत उन सभी युद्धरत राज्यों को

मजबूत करना था, जिन्हें हाल ही में जीतकर एकीकृत किया गया था। लेखन प्रणाली के मानकीकरण को इन बहुभाषी प्रदेशों में लागू किया था। कानून, मुद्रा, बाट और माप के अलावा परिवहन वाहनों के मानकीकरण को उसी श्रेणी में रखा गया था। उसके पहले, अर्ली झोउ राजवंश (770-256 ईसा पूर्व) के शासनकाल में युद्धरत राज्यों और परिणामी विकेंद्रीकरण की अवधि के दौरान चीनी भाषा को विकसित किया गया था, जिसमें कई विभिन्न प्रकार की चित्रलिपि शामिल की गई थीं।

जीते गए राज्यों को एकजुट करने और अपने शासन को मजबूत करने के लिए किन सरकार ने अपने साम्राज्य में सभी भाषाओं के लिए मानक आधिकारिक लिपि के रूप में 'छोटे सील' (शियाओझौन) शैली को अपनाने का फैसला किया। इसके साथ ही अन्य सभी लिपियों को खत्म करने का फैसला किया गया। इसका तत्काल लाभ यह मिला कि अपने सरकारी आदेशों और नियमों को बिना अनुवाद एवं विरूपण के केंद्र के आदेश एक ही लिपि में सभी राज्यों को जारी किए जाने लगे।

लिपियों के मानकीकरण को लागू करने के लिए, किन सरकार ने कुछ हद तक अलोकतांत्रिक उपायों का सहारा लिया—पूरे साम्राज्य में अन्य लिपि में लिखी गई सभी पुस्तकों को जला दिया गया और मानकीकरण के प्रयास का विरोध करनेवाले विद्वानों को सूली पर चढ़ा दिया गया।

चीनी इतिहासकारों का कहना है कि चीन में भाषा नियोजन होने की यह शुरुआत थी। हालाँकि चीन के इतिहास में एक साथ किताब जलाने की घटना पहले भी हुई थी, हम शायद उसे नहीं जानते। अगर ऐसा पहले भी हुआ तो यह कदम खूनी था और वह नुकसानदेह तथा विनाशकारी साबित हुआ होगा। लेकिन यह चीन के एकीकरण में प्रभावी और कारगर था। 'किन' के प्रयासों के बाद, चीन में हर साक्षर ने जाना कि मानकीकृत लिपि में कैसे लिखा जाए! हालाँकि उनकी भाषा (हुआ) या बोली अन्य साक्षर लोगों से संभवत: अलग थी।

मानकीकृत लिपि ने 'सिनिक परिवार' की विभिन्न भाषाओं को एकजुट करने और एक लिखित चित्रलिपि के प्रतिनिधित्व के लिए कार्य किया। उनकी भाषा परस्पर दुर्बोध और एक से अधिक अलग है कि भले ही कैंटोनीज, मंदारिन, शंघाईज और 70 से अधिक विभिन्न भाषा बोलनेवाले आज केवल मध्यम भाषा '(झौंगवेन) की बोली फंगयान में बोलते हैं; हालाँकि उनकी

भाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न और दुरूह हैं। चित्रलिपि लेखन प्रणाली का मतलब है कि हरेक कैरेक्टर ध्वन्यात्मक ध्वनि का प्रतिनिधित्व नहीं करता, लेकिन उसका एक मौलिक अर्थ है। यह संस्कृत धातु और अन्य पुरातन के सामान ही हैं, जिनके शब्द व्युत्पत्ति के नियमों को लागू करने से उपजे हैं।

आधुनिक समय—राष्ट्रीय लिपि से राष्ट्रीय बोली की भाषा

सदियों से लिखित शब्द डाक द्वारा प्रेषित करने की परंपरा संचार के सबसे आधुनिक रूप में भी कायम है। वहीं आधुनिक समय में सर्वव्यापी दूरसंचार तकनीक के जरिए मामूली वाक्यांश के उपयोग से दुनिया सिमट गई है। कम्युनिस्टों ने 1949 में चीन की मुख्य भूमि में सत्ता सँभाली थी, तब उन्होंने आधुनिकीकरण और विकास के लिए कई क्रांतिकारी कदम उठाए। उन विचारों में चित्रलिपि लेखन प्रणाली की जटिलता दूर करना और रोमनीकृत लिपि को अपनाना भी शामिल था। जबकि सबसे आधुनिक मशीनीकृत उपकरण लैटिन वर्णमाला या उसके संस्करणों के लिए निर्मित किया जा रहा था। (इसी के चलते रोमन हिंदुस्तानी मानक लिपि को 'आजाद हिंद फौज' में सुभाष चंद्र बोस द्वारा अपनाया गया)।

इस नीति-निर्देश के मद्देनजर 'चीनी भाषा मानकीकरण समिति' ने मंदारिन भाषा के लिए रोमनीकृत 'पिन्यिन' लिपि विकसित की। हालाँकि, नीति-निर्माता पर हावी चित्रलिपि के सांस्कृतिक महत्त्व और उनके उपयोगिता संबंधी कुछ बिंदुओं ने लोगों को आहत किया, जिसके चलते पिन्यिन को अलग कर दिया गया। चीनी सीखनेवाले विदेशियों के लिए एकमात्र सहायता के रूप में इसे अलग किया गया था। तब उन्होंने अपनी लिपि को जारी रखने का फैसला किया, लेकिन उन्होंने प्रति ग्लिफ कम ब्रश-स्ट्रोक के साथ-साथ दोहराव वाले शब्दों के बेहतर वर्गीकरण के साथ इसे सरल रूप में बनाया।

इस सरल चीनी लेखन प्रणाली को एक मानक लिपि के रूप में देश भर में लागू किया गया था। इस प्रकार आज भी चीन के स्कूली बच्चे अभी भी उच्च शिक्षा के लिए हजारों सरलीकृत चीनी अक्षरों के सीखने में कई साल खर्च करते हैं। यह उन्हें साक्षरता के कार्यात्मक स्तर को प्राप्त करने के क्रम में सीखना पड़ता है। ताइवान और अन्य विदेशी चीनी बस्तियों में अभी भी लिपि के मौलिक गैर-सरलीकृत संस्करण का उपयोग किया जाता है।

दूसरी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब रेडियो और टीवी दूरसंचार के साधन बना गए हैं, तब यह और संभव हो गया है। चीनी सरकार ने भी न केवल लेखन प्रणाली बल्कि बोली जानेवाली भाषा के भी मानकीकरण करने का फैसला किया है। मंदारिन भाषा, बीजिंग और उसके पड़ोस में बोली जाती हो, उसे 'राष्ट्रीय भाषा' घोषित किया गया। चीन के इतिहास में यह पहला कदम उठाया गया।

इस प्रकार, इस बहुभाषी देश के सरकारी स्कूलों, विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षण संस्थानों में सरकारी बोली जानेवाली भाषा के रूप में केवल मंदारिन में पढ़ाया जाता है। विज्ञान के सभी क्षेत्रों में, कला और पेशेवरों को भी मंदारिन में पढ़ाया जा रहा है। क्षेत्रीय भाषाएँ और बोलियाँ रोजमर्रा की जिंदगी में तो कायम हैं, लेकिन युवा पीढ़ी ने मंदारिन को तेजी से आत्मसात् किया है।

भाषा नीतियाँ और अल्पसंख्यक प्रतिरोध

इसके अलावा 'चीनी' निर्देश के तहत कई भाषाएँ और बोलियाँ भी शामिल थीं। चीन भी अपनी मौजूदा सीमाओं के भीतर 56 गैर-हान जातीय समूह हैं। सभी हानवाले चीनी भाषियों को मंदारिन चीनी मानक को जानना जरूरी है। हालाँकि जहाँ तक जातीय अल्पसंख्यकों का सवाल है, तो उनकी भाषाएँ कुल 30 अलग-अलग रूपों में भी लिखी जा रही हैं।

इन 56 गैर-हान जातीय अल्पसंख्यकों, जिनके पास अपनी भाषाओं के लिए औपचारिक लेखन प्रणाली नहीं थी। उन्हें चीन की अल्पसंख्यक भाषा-नीति से लाभ हुआ है। उनकी निरक्षरता की दर को कम करने में मदद मिली है। जोकि उन लोगों के बीच, लेकिन अल्पसंख्यक समुदायों के बीच, जहाँ लेखन प्रणाली अच्छी तरह से स्थापित है, वहाँ शासक नीतियाँ प्रतिरोध का कारण भी बन चुकी हैं।

बहुत शुरुआत में चीनी सरकार ने अल्पसंख्यक आबादीवाले स्कूलों में दो तरह की भाषा-नीति लागू की थी। हालाँकि, 1960 से सरकार ने स्कूलों में स्थानीय भाषा के प्रयोग से इनकार कर दिया था। प्राथमिक स्कूल और किंघाई प्रांत को छोड़कर तिब्बती भाषा की शिक्षा को 2015 तक सभी तिब्बती क्षेत्रों से चरणबद्ध तरीके से बाहर किया जा रहा है। झिंजियांग के उईघुर में सन् 2002 में ही बाहर करने का चरण शुरू हुआ और प्राथमिक स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालय

स्तर तक इसे लागू किया गया। सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय पहचान बनाने का प्रयास किया। इसी के तहत सभी अल्पसंख्यकों पर चीनी भाषा सीखने के लिए सैन्य दबाव डाला गया। हाल के समय में आर्थिक उछाल के बाद मंदारिन सीखने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन भी दिया और गरीबी को दूर करने के लिए मुख्य प्रेरक की भूमिका निभाई। (भारत में अंग्रेजी के मामले में यही स्थिति है, यहाँ ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के तहत पहली बार अंग्रेजी को सख्ती से लागू किया गया था और हाल के दिनों में यह स्थिति आर्थिक अवसर के मुख्य एवेन्यू के रूप में देखी जाती है।) अन्य तरीकों से भी कोशिश की गई; 1980 के दशक के मध्य में, बीजिंग ने 'अंतर्देशीय वर्गों' की नीति के तहत हान बहुल चीन में स्कूलों को अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को स्थानांतरित करने के लिए शुरू किया। इस नीति के तहत कम-से-कम दस लाख तिब्बतियों और उईघुरों की एक-चौथाई आबादी को बदला जा चुका है।

जैसाकि पिछले अनुभाग में जिक्र किया गया, चीन में प्राचीन काल से ही (जैसा कि दुनिया के अन्य भागों में है) एक निश्चित लेखन प्रणाली को अपनाना जरूरी है। भाषा के 'धार्मिक' प्रभाव का काल्पनिक रूपांतरण हुआ, जो 'चीनी' की पहचान बन चुकी है। आधुनिक समय में विस्तार के जरिए चीनी सरकार ने चीनी पहचान को सुदृढ़ करने की कोशिश की है। इससे न केवल लिपि मानकीकृत हुई, बल्कि चीनी मंदारिन बोली का मानकीकृत भी हुआ है। पहले बंदूक की नोक पर और बाद में आर्थिक प्रोत्साहन के माध्यम से, जो भी हो, प्रेरकों का नीति-निर्देश स्पष्ट और ईमानदार है। अल्पसंख्यकों के अवशोषण को एकल भाषा राष्ट्रीय पहचान में बदला गया। यहाँ कुछ हद तक उनकी भाषाएँ याद की जाती हैं और जातीय भाषा के रूप में संरक्षित किया जा रहा है। (संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इसी तरह का मामला है, हालाँकि गतिशीलता और सांस्कृतिक नियंत्रण के तंत्र कई मायनों में चीनी परिदृश्य से अलग हैं।)

इस प्रकार, सांस्कृतिक और भाषाई नीति के संदर्भ में, चीन के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक ढाँचे तथा बैंडविड्थ भारत से काफी अलग हैं। भारत में सभ्यता से संबद्ध 'धार्मिक' भाषा संस्कृत थी, लेकिन यह विविध प्राकृत के साथ सामंजस्य नहीं कर पाई, जो सभ्यता का प्रतिनिधित्व कर रही थी। हालाँकि इस पुस्तक के दूसरे अनुभाग में यह समझाया गया है कि प्राकृत के साथ संस्कृत का रिश्ता 'आकाश और पृथ्वी' सरीखा था। हरेक भाषा का योगदान

'जल चक्र' की प्रक्रिया की तरह था, जो सभ्यता के अंदर लगातार शुद्ध करके और पुनः रवेदार करके शब्दार्थ विज्ञान की धाराओं में समाहित हो गई।

बहुभाषी राज्य में 'धार्मिक' या 'शास्त्रीय' भाषा और विभिन्न अन्य भाषाओं के बीच जैविक संस्कृत-प्राकृत रिश्ते के बिना, भाषा नीति चीनी मॉडल के लिए विकसित करने जैसा लगता है। ईरान मामले का अध्ययन के रूप में बहुभाषी विविधता और पहचान की राजनीति के साथ काम करने के मामले में, विचारों या संरचनाओं के मामले में भारत को पेशकश करने के लिए चीन के पास बहुत ज्यादा नहीं है। भारतीय संस्कृति में विविधता के बावजूद उत्पादकता के प्रबंधन और शिक्षाप्रद एकीकरण में कुछ आंतरिक फायदे हैं, जोकि 'पहचान की राजनीति' ही नहीं, बल्कि 'अस्मिता की राजनीति' के आस-पास घूमती है।

आधुनिक समय में भाषा बढ़ाना

संवर्धन और मानकीकरण के लिए केंद्रीकृत निकाय

इस परिशिष्ट में जैसाकि ईरान मामले के अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, चीन ने भी बुद्धिजीवियों का एक निकाय गठित किया हुआ है, जो भाषा के विकास और मानकीकरण प्रक्रियाओं को लागू करने का प्रबंध करता है। उच्च शिक्षा सहित सभी शिक्षा में, सभी व्यापार और सभी सरकारी संचारों में चीनी मंदारिन में और केवल चीनी मंदारिन ही प्रयोग किए जाते हैं।

प्रवर्तन का एक उदाहरण यह है—हाल ही में अंतरराष्ट्रीय रिटेलर 'वॉलमार्ट' पर चीन में जुरमाना लगाया गया है, क्योंकि उसने अपनी अलमारियों में लगे अपने विशेष उत्पाद पर चीनी मंदारिन की तुलना में अंग्रेजी में बड़े फॉण्टवाला लेबल लगाया था।

सार्वजनिक, निजी और लोगों की भागीदारी

चीन में चीनी मंदारिन में ज्ञान अर्थव्यवस्था से संबंधित अनुवाद तकनीकी और अन्य सामग्री के लिए एक व्यापक बाजार है और अधिक-से-अधिक संख्या में लोग ऐसी सामग्री का अनुवाद और प्रकाशन करते हैं।

व्यापारिक घरानों की माँग को पूरा करने के लिए लेखक और अनुवादक नामित किए गए हैं, उनके साथ तकनीकी प्रशिक्षक, प्रोफेसर भी जुड़े हुए हैं। माइक्रोसॉफ्ट जैसी प्रौद्योगिकी कंपनियाँ खुद अपने उत्पादों को व्यापक बाजार

तक पहुँच हासिल करने के लिए इस तरह की सामग्री के उत्पादन पर खुद ही सब्सिडी देती हैं।

सरल भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—प्रवेश और उपयोग की हद का यह कुछ वास्तविक व व्यक्तिगत अनुभव है : एक बिंदु यह कि माइक्रोसॉफ्ट में जो मेरा प्रबंधक था, वह चीनी मूल का अमेरिकी नागरिक था। फिर भी उसने कुछ साल के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काम किया। जब भी उसे नवीनतम प्रौद्योगिकी के ट्रेंड पर खुद को अपडेट करने की जरूरत पड़ती थी, वह चीनी भाषा की पुस्तकें और लेख ही खरीदा करता था।

शब्दावली संवर्धन के प्राथमिक तरीके

शब्दावली को विकसित करने के तरीके समान हैं, जो ईरान के मामले के अध्ययन में कुछ विस्तार से रेखांकित किए गए हैं, जहाँ देसी शब्दों का उपयोग भी संभव है, वहीं पुराने शब्दों को अधिक प्रासंगिक एवं आधुनिक अर्थ देकर पुनः आविष्कार किया जा सकता है। पूरी तरह से नए शब्दों के आविष्कार के साथ ही आखिर में बड़ी संख्या में ऋण-शब्दों को भी अपनाया जा सकता है।

हालाँकि, फारसी से अधिक चीनी मामले में ऋण-शब्दों को बड़े पैमाने पर आयात किया गया प्रतीत होता है। बोली जानेवाली चीनी भाषा के आदिम संरचना के मद्देनजर आगे यौगिक, स्रोत आदि के लिए कोई समस्या नहीं है। दूसरे, चीनी लेखन प्रणाली में किसी भी ऋण-शब्द को देसी चीनी अवधारणाओं के आधार पर मौजूदा चित्रलिपि का उपयोग करना होगा।

चित्रलिपि के अक्षर पहले से ही देसी चीनी उच्चारण से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार, किसी भी ऋण-शब्द का स्वतः ही चीनी भाषा में बदलाव हो जाता है, जो चीनी भाषा में प्रयोग किया जाता है, अपनी प्रतिनिधित्ववादी लेखन प्रणाली के आधार पर! इस तंत्र के कारण ही यह चीनी समकक्ष आविष्कार करने के लिए परेशान करने के बजाय तकनीकी शब्दों के लिए ऋण-शब्दों का आयात करना कहीं अधिक सुविधाजनक लगता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा

चीन ने महसूस किया कि अंतरराष्ट्रीय मंच पर नरम शक्ति के प्रदर्शन में चीनी मंदारिन के प्रसार को भी शामिल करना चाहिए। खासकर उन देशों में,

जो विशेष रूप से निवेश और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं में या आकर्षक निवेश में शामिल होते हैं। चीनी सरकार अन्य पहलों के साथ चीनी भाषा सीखनेवाले विदेशियों के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान करती है।

चीनी पहले से ही इंटरनेट की दूसरी सबसे आम भाषा बन चुकी है। चीन ने कंप्यूटर और इंटरनेट कोड को गैर-अंग्रेजी तरीके से बनाने के लिए ऊर्जावान नीति को अपनाया है। उदाहरण के लिए, 1990 के दशक से पहले उनके पास 'रेड हैट लाइनैक्स' के बदले 'लिनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम' के खुले स्रोत के रूप में 'रेड फ्लैग' था। एक चीनी अक्षर पर आधारित विकल्प के लिए 'एमएस-डॉस ऑपरेटिंग सिस्टम' भी उपलब्ध था। अब वहाँ भी बहुभाषी वेब एड्रेस उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि लैटिन अक्षरों में 'एचटीटीपी' प्रोटोकॉल सिग्निफियर को छोड़कर अंग्रेजी को पूरी तरह मिलाने से बचा जा सकता है। ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के बढ़ते प्रसार के साथ ही ऐसे विशिष्ट शब्दों का निर्माण अब इसके इस्तेमाल से भी आसान हो गया है। इस तरह की कई बातें हैं, जिनसे भारत भी कुछ सीख सकता है।

कन्फ्यूशियस संस्थान (चीनी 'एलायंस फ्रेंकेस' का एक प्रकार) के सॉफ्ट पावर की पहल पर मंदारिन बोलनेवालों विदेशी लोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, जिसने हर महाद्वीप और हर देश में अपने को स्थापित किया है और जहाँ चीनी व्यापार की मौजूदगी भी है।

चीनी मंदारिन को समर्थन देनेवालों की आबादी (और इसलिए एक बहुत बड़ा बाजार प्रोत्साहन) बहुत बड़ी है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर व्यापार, विशेषकर सरकारी भाषा नीतियों से उसे फायदा मिला है। वे विदेशी विश्वविद्यालयों और कक्षाओं में मंदारिन पाठ्यक्रम सम्मिलित करने के लिए इन फायदों का उपयोग करते हैं। अनुमान है कि इस सदी के अंत तक चीनी मंदारिन वैश्विक वाणिज्य और राजनीति में बराबर की भाषा हो जाएगी।

विकल्प चुनने और अंग्रेजी के साथ प्रतिस्पर्धा

घरेलू समेकन और अंतरराष्ट्रीय विस्तार की चीनी रणनीति का एक बहुत ही दिलचस्प पहलू यह है कि 1990 के दशक में वे 'देशभक्ति कर्तव्य' के रूप में चीन के भीतर अंग्रेजी को बढ़ावा देने के लिए शुरू किया था। उन्होंने विदेश व्यापार और अन्य अवसरों से भी अंग्रेजी दक्षता को जोड़ा, लेकिन बाद में

अपने देश की तरह विदेशों में (पिछले भाग में वर्णित) भी अल्पसंख्यक भाषाओं की बनिस्पत आक्रामक तरीके से मंदारिन को बढ़ावा दिया। इस उत्सुक रणनीति का उद्देश्य अंग्रेजी के संभावित विनाशकारी शक्ति का उपयोग करना रहा। खासकर उन चीन के कुछ हिस्सों में अल्पसंख्यक भाषा को हटाना था, जहाँ के लोग मंदारिन लागू करने का विरोध कर रहे हैं। इसके अलावा उसी तर्ज पर कुछ धार्मिक धाराओं का मुकाबला करने के क्रम में बीजिंग चीन के खास धर्म से जुड़े चुनिंदा क्षेत्रों में पश्चिमी वित्त पोषित ईसाई मिशनरियों को अनुमति देता है, मसलन तिब्बती बौद्ध धर्म।

इस प्रकार, चीनी भाषा-नीति ने न केवल प्रतियोगी की भूमिका अदा की है, बल्कि अंग्रेजीकरण के खिलाफ रणनीतिक तैयारी भी की है। अपने देश और विदेशों में आक्रामक तरीके से राजभाषा चीनी मंदारिन को बढ़ावा देने और अन्य का प्रभाव मिटाने के लिए उसने अंग्रेजी भाषा और ईसाई धर्म का इस्तेमाल किया है। इस क्रम में, एक बार वह पूरी तरह से उप-सांस्कृतिक जड़ों का खत्मा कर चुका है।

□

ईरान—भाषाई अनुकूलन के माध्यम से फारसी पहचान की निरंतरता

एक बहुभाषी देश

ईरान अलग भाषाओं के साथ विविध भाषाई परिवारों (भारत-ईरान, तुर्की, अरबी, आदि) का एक बहुभाषी देश है। राज्य द्वारा फारसी (परसियन) को बढ़ावा दिया जाता है, जहाँ पहले से ही कई क्षेत्रीय बोलियाँ हैं।

हालाँकि जातीय फारसियों (विभिन्न बोलियों के साथ) की आबादी केवल 61 प्रतिशत है, फिर भी राज्य द्वारा इसे आक्रामक तरीके से राष्ट्रीय भाषा के तौर पर बढ़ावा दिया जा रहा है। भाषा और कुछ प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं—

जातीय भाषा	आबादी का प्रतिशत (लगभग)
फारसी	56 प्रतिशत
तुर्की (अंग्रेजी और तुर्कमेन बोलियाँ)	20 प्रतिशत
कुर्द	8 प्रतिशत
फारसी की बोलियाँ (लूर, गिलाकि, मजांदेरानी)	11 प्रतिशत
बलूची	2 प्रतिशत
अरबी भाषा	2 प्रतिशत
अन्य (अर्मेनियाई, जॉर्जियाई, असीरियन, पश्तो)	<1 प्रतिशत

पूर्व इसलामी ईरानी पहचान और भाषा

ईरान के इतिहास के प्रत्येक चरण में होनेवाले भाषा संबंधी ऐतिहासिक

फैसले के दीर्घकालिक परिणाम हुए हैं। पूर्व इसलामिक काल में ईरान की शास्त्रीय भाषा अवेस्तन थी, जो भारत-इरेनिक भाषाई परिवार का एक हिस्सा है और भाषा संस्कृत की बेटी थी। अखिल भारतीय 'आर्य' सभ्यता से इरानिक जनजातियों के एक वर्ग के अलगाव के बाद अखिल इरानिक सांस्कृतिक माध्यम के रूप में अवेस्तन खुद ही पारसी धर्म के साथ उभरा। वृहद् भारत से इरानिक के इस अलगाव के बाद ईरानी लोगों ने खुद को मजबूती से मध्य-पूर्वी परिवेश में स्थापित कर लिया। यह सब पारस्परिक और अंतर-आदिवासी संबंधों के अपने स्वयं के साधनों से हुआ।

अरब प्रभाव

अरब आक्रमण और इसलामीकरण की लहरों के साथ ईरान की धार्मिक और शास्त्रीय विरासत एक नई संस्कृति-संक्रमण प्रक्रिया के अधीन थी। इस दौरान उनमें से ज्यादातर नष्ट कर दिए गए। हालाँकि देसी भाषाएँ लंबे समय से पूर्णत: अरबीकरण के प्रयास के बावजूद जीवित रहीं। हाँ, इतना जरूर हुआ कि उनकी पहचान बदल दी गई, जो तीन चरणों या 'लहरों' में हुआ—

पहली लहर

651 ईस्वी तक फारस पर अरब विजय के बाद समकालीन 'पहलवी' भाषा की जगह अरबी प्रतिस्थापित करने की माँग उठने लगी थी। दूसरे शब्दों में, ईरान में सिर्फ वर्तमान सीरिया की तरह अरबीकरण किए जाने की माँग उठी थी, जिसके मूल निवासी अरब नहीं थे, लेकिन अब वे भाषा और संस्कृति से अरबी हैं। अर्थात् फारसी के अरबीकरण की शुरुआत में इसलामीकरण की नींव रखी गई—गैर-अरबों को 'मुअराबीन,' मसलन अरबीकृत गैर-अरब को बदलना और उनका सांस्कृतिक समावेशन।

कई महान् इसलामी मौलवी, जो वास्तव में फारसी वंश के थे, वे बदल दिए गए थे। यह पहली लहर थी, जिसमें अरबी को सत्ता, प्रशासन, साहित्य, प्रौद्योगिकी और धर्म की भाषा बनाने के पक्ष में देसी पहलवी की पूरी तरह से उपेक्षा की गई। काफी संख्या में पुराने पहलवी शब्दों को संशोधित रूप में अरबी भाषा में शामिल किया गया।

दूसरी लहर

कुछ बिंदुओं को लेकर जमीनी स्तर पर अरबीकरण के खिलाफ असंतोष है, इसलिए अलग फारसी/ईरानी पहचान का बीज फिर सामने आया। फिरदौसी, गोरगनि जैसे फारसी विद्वानों ने साहित्य की रक्षा की और उन्हें पुनर्जीवित करने की कोशिश की या ईरानी सांस्कृतिक लक्षणों और खासियतों के साथ पहलवी भाषा याद करने का प्रयास किया। उनमें से कुछ लोग इसलामी कानून या संवेदनशीलता के खिलाफ थे। उन्होंने पुनर्जीवित करने की कोशिश में, बिना किसी अरबी शब्द को शामिल किए, पहलवी के एक प्रारूप को उपयोग करने की कोशिश की। हालाँकि, फारसी भाषा में अब संशोधित अरबी लिपि का इस्तेमाल किया जाता है।

यह दूसरी लहर थी। फारसी पुनः अपने मूल शास्त्रीय अवेस्तन/संस्कृति की जड़ों और तने के साथ खुद को नहीं जोड़ सकी। इसे मुख्य अरब इसलामी की जड़ और तने के रूप में एक अलग शाखा के रूप में जोड़ा जाने लगा। ईरान अरब-इस्लामिक उप-सभ्यता का प्रतिष्ठित केंद्र बन गया।

तीसरी लहर

तब वहाँ रूमी और हाफेज जैसे बेहद लोकप्रिय धार्मिक और दार्शनिक कवि थे। उन्होंने अरबी का अलग से उपयोग करते हुए नई फारसी में खुद को अभिव्यक्त किया। इससे यह इंगित होता है कि उस समय तक फारसी जिंदा थी और साहित्यिक तथा लोकप्रिय भाषा के रूप में हिलोरें मार रही थी। जहाँ अरबी धार्मिक और विज्ञान की भाषा थी, वहीं फारसी रहस्यवाद की भाषा थी। समय के साथ यह अदालत की भाषा के रूप में भी विकसित हुई। ऐसा न केवल ईरान में हुआ, बल्कि तुर्की के अट्टोमंस (तुर्क) और भारत में मुगल साम्राज्य में भी हुआ। इस प्रकार, सत्ता पदानुक्रम के मामले में औपनिवेशिक साम्राज्य-निर्माण पथ पर फारसी भाषा और संस्कृति इसलामी सभ्यता की पीठ पर सवार होकर आगे बढ़ी।

यह बहुत हद तक एक संकरित फारसी थी, फिर भी आकर्षक भाषा थी। इस प्रकार, इन महान् कवि दार्शनिकों ने खास दार्शनिक उपयोग के लिए अरबी तकनीकी शब्दावली का इस्तेमाल किया, लेकिन अन्य बातों के लिए शुद्ध फारसी शब्दों का ही प्रयोग किया था।

इस समय तक ध्वनियों का मौलिक प्रारूप बदल गया था। फारसी लोग अपने दूर के पूर्वजों के नाम का सही उच्चारण भी कर सकते थे। जैसे 'ट्रिटौना' शब्द बदलकर 'फेरीदून' बन गया। उन्होंने अपनी मूल ध्वनियों से छुटकारा पाने का फैसला लिया, फारसी को अरबी के साथ साझा किया गया, जैसे नरम और ऊष्म 'वें' के रूप में (ح)। 'सा' को 'वें' परिवर्तित किया गया। इस प्रकार, अरबी के अनुरूप करने के लिए आंशिक रूप से उनके पुराने स्वर को संशोधित किया गया और आंशिक रूप से अपने पुराने स्वर को हटाया गया, जिससे वे सिर्फ अलग दिखें। इस तरह फारसी भाषा अपने मौजूदा स्वरूप में आई और पुरानी भाषा की जगह ली। आधुनिक ईरानी विद्वानों ने अरबी प्रभाव की फारसी मातृभाषा के प्रति अपना रुख नरम रखा। इसी मुलायम व्यवहार के परिणामस्वरूप अरबी पर अनुग्रह बना रहा।

समकालीन दिशा-निर्देश

उन्नीसवीं सदी में, तेहरान में अन्य बोलियों की तुलना में फारसी बोली अधिक प्रमुखता से उभरी, जिसे 1787 में क़ाजार राजवंश द्वारा फारस की राजधानी के रूप में चुना गया था। यह आधुनिक फारसी बोली समकालीन 'स्टैंडर्ड फारसी' का आधार बन गई है, जो मध्य युग की 'शास्त्रीय फारसी' का स्थान ले चुकी है।

आधुनिक समय में, इसलामी क्रांति से पहले जोर दिया गया था और विस्तार के मामले कुछ हद तक (ईरान-इराक युद्ध के दौरान अरब विरोधी भावना के कारण) जहाँ तक संभव हो सका, वहाँ तक फारसी के रूप में आधुनिक शब्दावली रखने के प्रयास किए गए। क्रांति से पहले, अहमद कसरवि जैसे ईरान के बुद्धिजीवी दृढ़ता से फारसी भाषा के अरबीकरण के खिलाफ खड़े थे। वे यह दिखाने के लिए कठिन प्रयास कर रहे थे कि तुर्क-ईरानी, जो सबसे बड़े जातीय अल्पसंख्यक थे, ये वास्तव में जातीय फारसी थे, जिनकी पैतृक भाषा फारसी के बजाय तुर्की से आई थी और जिससे ईरानी राष्ट्रीयता उभरकर आई थी। जैसे वेस्टफालियन अवधारणा राष्ट्रीयता की तरह प्रतीत होती है, जो जातीय और भाषाई समानता और एकीकरण पर आधारित है। ईरान अन्य ईरानिक देशों (कुर्दिश, ताजिक और उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान में भी) के बीच एक सांस्कृतिक और महत्त्वपूर्ण देश है, लेकिन इसकी राजनीतिक

पहचान में नाकामी के पीछे विरोधाभासों का हाथ रहा है, चाहे वह शिया हो और सुन्नी या भाषाई या पूर्व इसलामी अतीत हो और या भारत के साथ आत्मीयता संबंध।

ईरानी इसलामवादियों के अलावा लगातार चिंता का विषय यह भी है कि वे पश्चिमी सांस्कृतिक आक्रमण या अपने गुरुत्वीय खिंचाव पर क्या विचार करें? एक सदी से भी अधिक समय से ईरानी समाज के कुछ वर्गों पर पश्चिमी सनक हावी हुई है। पश्चिमी सनक ('नशा' के रूप में) मनाया गया और उसका विरोध भी हुआ। लोकप्रिय पश्चिमी कम्युनिस्ट तत्त्वों के साथ इसलामी क्रांति करने के लिए अग्रणी विचारक अली श्रीएटी और आलोचना के लिए विद्वान् जलाल अल-ई अहमद द्वारा शब्द 'घरबजादेगि' गढ़ा गया। इसलिए पश्चिमी सनक के खिलाफ इस प्रतिक्रिया में भी भाषा को स्थिर रखने के लिए ऋण शब्दों के भारी आयात की जरूरत महसूस की गई।

जो स्पष्टता जाहिर होती है, वह सबसे अधिक तकनीकी, दार्शनिक के लिए, बेशक धार्मिक शब्दावली, फारसियों को नवनिर्मित शब्द गढ़ने के बजाय अरबी की ओर मुड़ना पड़ा। फारसी शब्दावली का निर्माण कठिन है, क्योंकि अवेस्तन के पास वाक्य रचना में व्याकरण की जड़ें नहीं हैं और इसलिए उन्हें एक साथ उन शब्दों को पिरोने की जरूरत है या संस्कृत की तरह फारसी शब्दों में संशोधन करना होगा। लेकिन अरबी वाक्य-रचना को संस्कृत की तरह जड़ों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है, और इसलिए यह नई व्यवस्थित शब्दावली तैयार करना आसान है। अवेस्तन के उन्मूलन के बाद फारसी व्याकरण अरबी में लिखा गया। आज भी कक्षाओं में अरबी की पढ़ाई के प्रति रुझान इसलिए है, क्योंकि इसकी निर्भरता फारसी भाषा सीखने के मानक का हिस्सा है।

फारसी को पुनः अपनी मातृभाषा अवेस्तन के साथ जोड़ने के लिए वास्तविक विवर्तनिक सभ्यता बदलाव की आवश्यकता होगी।

(या सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए संस्कृत की भी उतनी ही अहमियत है, हालाँकि अवेस्तन व्याकरण का अस्तित्व अब नहीं है, फिर भी भारत में पारसी विद्वानों द्वारा पाणिनि के संस्कृत व्याकरण को खँगाला जा रहा है।) आखिरकार, यह 'आवश्यकता और संभावना' की बात है, जो परिस्थिति और जज्बे के कारक हैं।

वर्तमान में भी रोजमर्रा में इस्तेमाल होनेवाले सरल फारसी शब्दों को लेकर प्रयोग किया जा सकता है। अरबी से अधिक तकनीकी शब्दों को लेकर और वैज्ञानिक ऋण शब्दों की एक बड़ी संख्या पश्चिम, ज्यादातर फ्रेंच से और कभी-कभार अंग्रेजी से लेकर आधुनिक शब्दावली तैयार की जा सकती है।

आधुनिक फारसी का कार्यान्वयन

हमें यह देखना होगा कि ईरान ने कैसे आधुनिक भाषा के रूप में फारसी को लागू किया है। परसियन (फारसी) भाषा में ही कई बोलियाँ हैं। बोली के संस्करणों से लिखित फारसी को भी बहुत कुछ अलग किया जा सकता है। ईरान ने फारसी मानकीकरण और नवीनतम तकनीकी और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के साथ अद्यतन रखने के लिए एक केंद्रीकृत सरकारी निकाय बनाया हुआ है। इस निकाय को देश भर के विभिन्न विश्वविद्यालयों से संबंधित विद्वानों और प्रोफेसरों की परिषद् चला रही है। इस निकाय को 'फरहंगजेस्तान ई जबान वा अदब ई फारसी', यानी 'फारसी भाषा और साहित्य के लिए सांस्कृतिक निकाय' कहा जाता है।

क्षेत्रीय या देसी जातीय का उपचार

ईरान ने एक सदी से भी अधिक समय से पारसीकरण नीति को लेकर आक्रामक रुख अपनाया है। ऐसा बिना किसी बाध्यता के किया गया है और उन खास क्षेत्रों में, जहाँ देसी अल्पसंख्यकों की संख्या बहुतायत में है। इस नीति का वहाँ काफी प्रतिरोध भी हुआ है और कुछ अलगाववादी भावनाएँ प्रदर्शित हुई हैं। उदाहरण के लिए, पूर्वी अजरबेजान के राज्य, जो अंग्रेजी बहुल क्षेत्र हैं, वहाँ के लोग स्कूलों और बाजारों में फारसी नहीं, बल्कि अंग्रेजी का उपयोग करना पसंद करते हैं। व्यापारी समुदाय (बजारगन) में भी, अंग्रेजी बोली को जानना एक परिसंपत्ति माना जाता है। इसकी वजह यह है कि उस तबके में महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधित्व है। जहाँ तक स्कूली शिक्षा और राज्य के समर्थन में मानक का सवाल है, तो फारसी बोलियाँ खुद ही उपेक्षित रही हैं।

मानकीकरण के लिए नीतियों की सूची

फारहंजेस्टान 'शब्दों का चयन' (गोरुह ई वजहे गोजिनि) के लिए एक

विशेष समूह बनाया है। वे शब्दों के चयन और प्रकाशन के लिए सामान्य दिशा-निर्देश तैयार करने में निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखते हैं—

1. गैर-तकनीकी शब्द और उनका प्रयोग,
2. पश्चिम से आयातित शब्द,
3. विज्ञान और शिक्षा की अन्य भाषा को फारसीकृत करना,
4. शब्दों के चयन के लिए मानक तैयार करना,
5. शब्द मानकीकरण के लिए पद्धति विकसित करना ,
6. नई शब्दावली तैयार करना,
7. नए शब्दों को अपनाने के लिए नियम बनाना,
8. समकक्ष शब्दों के मानकीकरण के लिए नियम तैयार करना।

नई लिपि के उपयोग पर विचार

वर्तमान में फारसी की जो लिपि इस्तेमाल की जा रही है, वह अरबी लिपि का एक संशोधित रूप है। हालाँकि अरबी लिपि को जब बिना स्वरचिह्नों के सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है तो वह बहुत सटीक नहीं बैठती है। जैसाकि फारसी के साथ आम तौर पर हो चुका है, लिपि को अपनाने में भाषा के स्वरों में संशोधन की बात नहीं रह जाएगी। इस प्रकार, समय के बदलाव के साथ 'हिज्जे' किसी भी भाषा के स्वरों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आधुनिक समय में कई फारसी बुद्धिजीवियों ने फारसी-अरबी से इतर एक अलग लिपि के लिए पक्ष और विपक्ष पर विचार किया है। इन विद्वानों में एफ. अखुंदजदेह, एम.ए. जमालजदेह, एस. हेदायत, मेलकॉम खान, ए टेलेबॉफ, जेड मराकेयी और ए. कसरवि शामिल हैं।

जैसाकि ऊपर के खंड में कहा गया है, अपनाए गए आयातित-शब्द को फारसी भाषा की वर्तमान ध्वनियों की अक्षरमाला का पालन करना चाहिए और इस अर्थ में कि लिपि स्वत: ही शब्द को आत्मसात् करने में मदद करती है। इस प्रकार माप और अन्य मानक चिकित्सा तथा तकनीकी शब्दजाल की इकाइयों के मामले में अंतरराष्ट्रीय स्तर के कुछ मानकीकरण की आवश्यकता है। हालाँकि उन्हें फारसी भाषा में ही रखा जाना है। इसके उच्चारण में सहायता के लिए फारहंजेस्टान ने विशेष चिह्नों के इस्तेमाल का सुझाव दिया है। लेकिन यह भी मुश्किल हो सकता है, क्योंकि भाषा में वे विशेष संकेत आमतौर पर इस्तेमाल

नहीं किए जाते हैं और उनसे आम आदमी का उच्चारण निश्चित रूप से लिपि से प्रभावित होता है।

इस प्रकार, शायद राजनीति के साथ-साथ व्यावहारिक कारणों से सांस्कृतिक निहितार्थ के चलते ऐसा करना भी आधुनिक समय में ध्रुवीकृत ईरानी समाज में विभाजनकारी है। इसलिए 'सार्वभौमिक फारसी लिपि' में मौजूदा लिपि का बदलाव नहीं किया गया है।

□

जापान—जापानी भाषा में शिक्षा प्रणाली

—राकेश मोहन दास

जापानी भाषा के प्राचीन इतिहास के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। आठवीं सदी से पहले के पुराने ग्रंथों के बारे में पता नहीं लगाया जा सकता है। हालाँकि छठी शताब्दी के आस-पास बौद्ध धर्म के प्रसार के माध्यम से चीनी लेखन प्रणाली का जापान के लिए आयात किया गया था। पहले के ग्रंथों को शास्त्रीय चीनी में लिखा गया था (केवल समय-सीमा का पता लगाने के लिए, भारत में संस्कृत व्याकरण पहले से ही अच्छी तरह से संरचित और 12 सदियों पूर्व पाणिनि द्वारा लिखित एवं समृद्ध ग्रंथों की रचना हुई थी)। इस लेख में देश में सभी क्षेत्रों में देसी भाषा जापानी के इस्तेमाल की सीमा पर फोकस किया गया है। वर्तमान में अगर कोई पूछता है कि विकास के अलावा जापान की विशिष्ट विशेषताएँ क्या हैं, तो सीधा सा जवाब होगा—

- सड़कों और बाजारों के आस-पास जापानी पांडुलिपि और शिलालेख।
- परंपरागत किमोनो पहने जापानी महिला पेशेवरों का सड़कों पर घूमना।
- छोटे या बड़े बौद्ध मठों या शिंटो मंदिरों की अनगिनत संख्या।
- हाव-भाव और बातचीत में लोगों की बेहद विनम्रता।

इनसे स्पष्ट रूप से जापानियों की अपनी संस्कृति के प्रति गंभीरता और समर्पण साबित होता है। जापान 'जापानी' यानी अपनी तरह से आधुनिकीकरण कर रहा है। हालाँकि जापान संभवतः किसी को बिना ठेस पहुँचाए और विदेशियों में ईर्ष्या पैदा किए बिना अपनी संस्कृति और भाषा के लिए गर्व एवं अपनेपन की भावना प्रदर्शित करने का सबसे अच्छा उदाहरण है।

जापानी लोग सहज रूप से शरमीले और विनम्र होते हैं। अब भी उन्हें

अपने देश पर गर्व है। वे बात-बात पर क्षमा माँगते हैं और आभार व्यक्त करते हैं। वे अंग्रेजी बोलने में सक्षम नहीं होने के लिए विदेशियों से ईमानदारी से माफी माँग लेते हैं, लेकिन वे अपनी भाषा पर बहुत मजबूत पकड़ रखते हैं।

जापानी शिक्षा प्रणाली एक व्यक्ति के मन में गहरा असर डालती है। वास्तव में, जापान की शिक्षा प्रणाली ने द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत के बाद जापान को पटरी पर लाने में दशकों में तेजी से आर्थिक विकास में एक केंद्रीय भूमिका निभाई थी। बच्चों को जापानी अक्षर पेश किए जा रहे हैं। किंडरगार्टेन में (हीरागाना-स्वर प्रणाली, जिसमें स्वेदशी अक्षर/शब्द को अपनाया गया है, काताकाना-स्वर प्रणाली में आयातित और विदेशी शब्द शामिल किए गए हैं)। वे बाद में अपने प्राथमिक विद्यालय में कांजी-शाब्दिक लिपि सीखते हैं। अंग्रेजी भाषा हाई स्कूल की शिक्षा के अंत तक जूनियर हाई स्कूल के माध्यम से जारी है, जो दूसरी भाषा के रूप में प्राथमिक विद्यालय के मध्य में शुरू की गई है। उच्च विद्यालय में स्नातक होने के लिए अंग्रेजी विषय की परीक्षा में पास होना अनिवार्य है। हालाँकि, यह उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक नहीं है, फिर भी एक उपलब्धि है।

जापान में शिक्षा प्रणाली के कुछ पहलुओं को मैं यहाँ रखना चाहूँगा, जोकि मेरे कुछ सहयोगियों के अनौपचारिक साक्षात्कार पर आधारित हैं—

सभी जापानी बच्चे प्राथमिक से हाईस्कूल तक अपनी देसी भाषा के माध्यम में शिक्षित हो रहे हैं। प्राथमिक स्कूल की चौथी/पाँचवीं ग्रेड से अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है। वैसे विदेशी निवासियों के बच्चों के लिए अंग्रेजी माध्यम के स्कूल बहुत कम हैं। सभी इंजीनियरिंग, मेडिकल और बिजनेस स्कूलों में जापानी माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। व्याख्यान और यहाँ तक कि प्रयोगशाला में प्रयोग के निर्देश भी जापानी भाषा में दिए जाते हैं। उस दौरान कभी-कभार संकेतों के लिए अंग्रेजी शब्दावलियों का भी इस्तेमाल किया जाता है।

बेशक, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अंतरराष्ट्रीय समुदाय में पुस्तकों और शोध पत्रों की भागीदारी तथा उनका लाभ उठाने के लिए उन्हें अंग्रेजी में प्रकाशित कराया जाता है। एक सेमेस्टर में अंग्रेजी भाषा में गिने-चुने वैकल्पिक पाठ्यक्रम कराए जा रहे हैं। अंग्रेजी तकनीकी शब्दों का व्यापक रूप से इस्तेमाल जापानी अनुदेश द्वारा अपनाया जाता है और वे काताकाना लिपि में लिखे जाते

हैं। पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन जापानी भाषा में ही होता है। अंग्रेजी माध्यम की कुछ पुस्तकों को प्रशिक्षकों/प्रोफेसर द्वारा आगे पढ़ने के लिए छात्रों को सुझाव दिया जाता है। कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों का वैज्ञानिकों/प्रोफेसरों द्वारा जापानी में अनुवाद किया जा रहा है।

मेरी समझ से, क्योटो विश्वविद्यालय जापान का दूसरा सबसे अच्छा विश्वविद्यालय है और दुनिया के विश्वविद्यालयों में 32वें स्थान पर है। वहाँ जापानी सीखनेवाले कुछ एशियाइयों को छोड़कर स्नातक शिक्षा के लिए कोई भी विदेशी छात्र पंजीयन नहीं कराता है। लेकिन वहाँ कुछ विदेशी मास्टर डिग्री हासिल कर रहे हैं, जो मुख्य रूप से एशियाई हैं। शिक्षा, संस्कृति, खेल, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय (एमईएक्सटी) कोर विश्वविद्यालयों की स्थापना और उनके अंतरराष्ट्रीयकरण के लिए 'जापानीज सोसाइटी फॉर प्रमोशन ऑफ साइंस' (जेएसपीएस) को जैसे कुछ कार्यक्रमों को प्रोजेक्ट के रूप में बढ़ावा देता है। इसके तहत प्रवेश से पहले विशेष अंग्रेजी प्रवेश परीक्षा आयोजित की जाती है। विदेशी छात्रों के लिए अंग्रेजी माध्यम में कोर्स कराए जा रहे हैं और चयनित छात्रों को वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती है।

जापानी सिविल सेवा परीक्षा में भी जापान की पकड़ और भाषा के प्रति सजगता के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। परीक्षा चार भागों में कराई जाती है—सबसे पहले, सभी क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर के ज्ञान का परीक्षण होता है। इस अनुभाग में अंग्रेजी भाषा पर कुछ सवाल भी होते हैं। दूसरे अनुभाग में विशेषज्ञ स्तर की परीक्षा होती है, जिसमें कानून, अर्थशास्त्र, राजनीति विषय में से उम्मीदवार कोई एक विषय चुन सकता है। तीसरे अनुभाग में उम्मीदवार को समकालीन मुद्दों पर एक निबंध लिखना होता है, जिससे वह जापानी भाषा और साहित्य के साथ-साथ सामान्य ज्ञान में अपनी दक्षता साबित कर सके। और अंत में, एक पैनल जापानी भाषा में इंटरव्यू लेता है। हालाँकि परीक्षा की यह संरचना भारत की तरह काफी बड़ी है, पर विरोधाभासी और आवश्यक बिंदु यह है कि भारत में अंग्रेजी भाषा का महत्त्व है। कुछ चयनित उम्मीदवारों को जल्द ही अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि और राजनयिक बना दिया जाता है; हालाँकि इसके लिए उन्हें केवल अंग्रेजी भाषा की प्रारंभिक स्तर की परीक्षा पास करनी होती है। हालाँकि यकीन नहीं है, फिर भी मुझे लगता है कि उनकी परिवीक्षा में उन्हें अंग्रेजी भाषा में कुछ प्रशिक्षण के दौर से गुजरना चाहिए। इसलिए कहना यह है

कि अंग्रेजी कहीं भी अकादमिक आकांक्षा नहीं है, लेकिन दूसरे देशों के बीच संचार के लिए एक भाषा की जरूरत होती है।

आखिर में दैनिक जीवन में मिलनेवाले 50 में से सिर्फ एक व्यक्ति से आप अंग्रेजी में बातचीत कर सकते हैं। सभी संस्थानों, मसलन बैंकों, डाकघरों, अस्पतालों, सरकारी कार्यालयों, सार्वजनिक स्थानों और शॉपिंग मॉल में संचार के रूप में सिर्फ जापानी का ही उपयोग किया जाता है। कुछ जगहों पर अंग्रेजी दुभाषिए कुछ स्थानों में काम करते हैं। अन्यथा एक अजनबी (जो अंग्रेजी बोल सकता है) को अपने काम करवाने के लिए किसी व्यक्ति की खोज करने के लिए अपने भाग्य पर भरोसा करना पड़ता है। एक व्यक्ति को किसी काम को कराने के लिए अपना अधिकांश समय अंग्रेजी बोलनेवाले देसी व्यक्ति से दोस्ती करने में देना पड़ता है। बहरहाल, जापानी लोग सामान्य रूप से शालीन और विनम्र होते हैं, जो वास्तव में उनके भाषा प्रबंधन को सीखने के लिए प्रेरित करता है। यह कोई बाध्यता नहीं है, लेकिन रुचि से बाहर है।

टिप्पणियाँ :

अध्याय-1 और 2

1. भाषा, जी.एन.पी. और जनसंख्या, Microsoft Encarta, 2002
2. भाषा, जी.एन.पी. और जनसंख्या, Microsoft Encarta, 2002
3. http://www.unima.mw/n-requirements.html#uee
4. http://www.technion.ac.il/technion/studies/exchange/hebrew.html
5. Horace Wilson, "Education of the natives of India," Asiatic Journal (1836) Quoted from Viswanathan (1998 : 41)
6. Edward Thornton, Parliamentary papers, 1852-53. Quoted from Viswanathan (1998 : 23)

अध्याय-3

1. http://archive.indianexpress.com/news/the-death-of-anil-meena/923471/
2. Unhealed-Wounds http://caravanmagazine.in/reportage/unhealed-wounds
3. http://www.newindianexpress.com/states/tamil_nadu/Engineering-student-ends-life-over-poor-English-skill/2013/11/14 article1889808.ece#.UzjHNajoQfQ

4. http://www.thehindu.com/news/cities/chennai/firstyear-student-at-anna-university-commits-suicide/article3325338.ece
5. http://www.thehindu.com/news/national/tamil-nadu/for-dalit-students-its-a-nightmarish-leap-from-tamil-medium-to-english/article4686735.ece
6. http://www.business-standard.com/article/pti-stories/bpharma-student-attempts-suicide-113090400470_1.html

अध्याय-4

1. Zareer Masani. 26 November, 2012. English or Hinglish-which will India choose?, BBC News Magazine
2. Education First. Year 2012–2014 rankings. English Proficiency Index
3. Singh, Joga. 2013, International Opinion on Language Issues
4. Sabri Kocakulah, Evrim Ustunluoglu and Aysel Kocakulah, Asia-Pacific Forum on Science Learning and Teaching, Volume 6, Issue 2, Article 2 (Dec., 2005), The effect of teaching in native and foreign language on students' conceptual understanding in science courses.
5. Muralidharan, Karthik, LiveMint 2014, A renewed model of education,http://www.livemint.com/Opinion/t9oSpg4VnEgK6yKx3tmAXM/A-renewed-model-of-education.html
6. Market Research Firm IMRB. Cited by Nikita Peer. 13 June 2014. 42% of internet users in India use local language for accessing content: IMRB. TechCircle.in

अध्याय-15

1. क्रॉफर्ड, जेम्स, 1990, 'इफेक्टिव लैंग्वेज एजुकेशन प्रैक्टिसेज एंड नैटिव लैंग्वेज सरवाइवल', नैटिव अमेरिकन लैंग्वेज इश्यूज
2. 97वीं कांग्रेस, पहला सत्र, एसजेआर 72, सिनेट ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स, 27 अप्रैल, 1981.

अध्याय-16

1. नेल्सन, केली, 2005, 'लैंग्वेज पॉलिसीज एंड माइनॉरिटी रेसिस्टांस इन चाइना' सोसाइटी फॉर इंटरनेशन एजुकेशन, कोलंबिया यूनिवर्सिटी
2. डॉयर, एरिइनी एम, 6 मई, 2014, 'चाइनाज लैंग्वेज पॉलिसी गोज ग्लोबल', वर्ल्ड पॉलिटिक्स रिव्यू

अध्याय-17

फारसी भाषा प्रकाशन की—'फरहनजेस्टान ई जबान वा अदब ई फारसी'—ईरान की भाषा परिषद्।

संदर्भ

Dharampal. 1995. The Beautiful Tree: Indigenous Indian Education in the Eighteenth Century, Other India Press.

Thiong'o, Ngi'g)' wa. 1986. Decolonizing the Mind: The Politics of Language in African Literature.

Viswanathan, Gauri. 1998. Masks of Conquest, Oxford University Press.

Gandhi, M.K. 1909. Hind Swaraj or Indian Home Rule.

भारत में आज यह अवधारणा व्याप्त हो गई है कि केवल अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा ही विकास का आधार है। इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून और उच्च न्यायालयों का संचालन केवल अंग्रेजी में होने से इसी माध्यम का वर्चस्व बना हुआ है। 'अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल' पुस्तक इसी मिथ्या भ्रम को खंडित करती है। समृद्ध देशों में लोग विज्ञान एवं अन्यान्य उच्च शिक्षा अपनी मातृभाषा में प्राप्त करते हैं। शोध विवरणों से पता चला है कि छात्र अपनी मातृभाषा में विज्ञान को बेहतर समझते हैं।

भारत को विकास के पथ पर आगे ले जाने के लिए उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होनी चाहिए। इस पुस्तक में विशिष्ट नीति प्रस्तावों के अंतर्गत भारत की प्रतिभा को विश्व स्तर पर उभारने हेतु एक व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त किया गया है। निजभाषा के प्रति सचेत और जागरूक कर स्वाभिमान और गर्व के साथ विकास करने को प्रेरित करती पठनीय पुस्तक।

संक्रान्त सानु सिएटल और गुड़गाँव स्थित एक उद्यमी, लेखक और शोधकर्ता हैं। उनके लेख भारत, अमेरिका और ब्रिटेन के विभिन्न प्रकाशनों में प्रकाशित होते रहते हैं। उन्हें माइक्रोसॉफ्ट कॉर्पोरेशन में विभिन्न इंजीनियरिंग एवं प्रबंधन भूमिकाओं में नौ वर्ष से अधिक का अनुभव है। वे आई.आई.टी. कानपुर और टैक्सास विश्वविद्यालय के स्नातक रहे हैं। प्रौद्योगिकी से संबंधित उनके छह पेटेंट भी हैं।

शिक्षा संस्कृति
उत्थान न्यास

प्रभात पेपरबैक्स
प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक का उद्यम
www.prabhatbooks.com

ISBN 978-93-5186-398-4
₹ 125/-